बाल विज्ञान पत्रिका जून 2014

चकमक

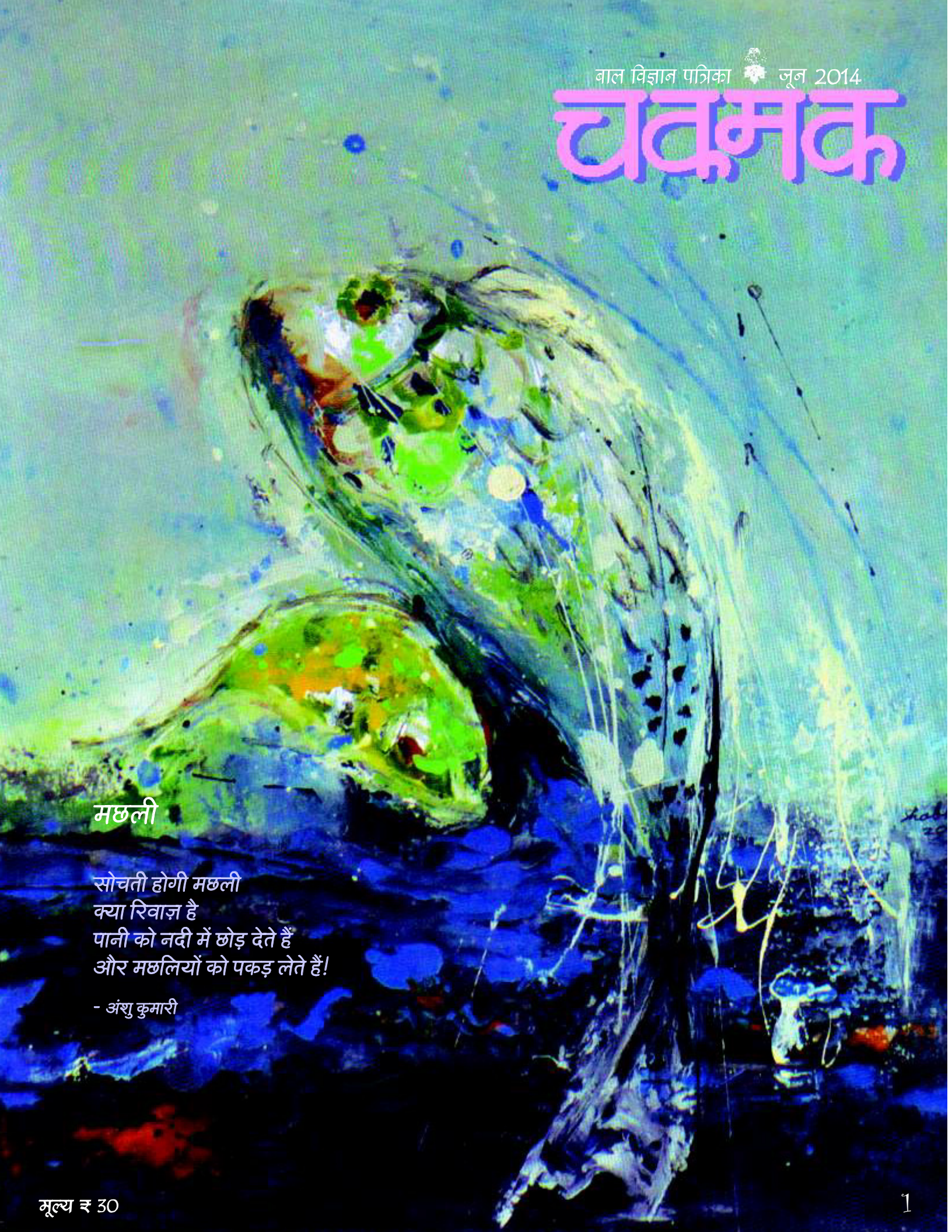

मछली

सोचती होगी मछली
क्या रिवाज़ है
पानी को नदी में छोड़ देते हैं
और मछलियों को पकड़ लेते हैं!

- अंशु कुमारी

मूल्य ₹ 30

चमत्कार

एक साधु नदी के किनारे ध्यान कर रहा था। उसे अपनी सिद्धियों से प्रभावित करने के लिए एक अन्य साधु ने पानी पर चलते हुए नदी पार की और उससे मिलने आया।

पहले साधु के पास जाकर उसने कहा, ''देखा मेरा चमत्कार!''

''तुमने पानी पर चलकर नदी पार की यही न? हाँ देखा। यह तुमने कहाँ सीखा?''

''बारह बरस मैंने हिमालय में तपस्या की और हठयोग का अभ्यास किया। बारह बरस मैं एक पाँव पर खड़ा रहा और सप्ताह में छह दिन उपवास रखा। तब कहीं मैं यह सीख पाया।''

पहले साधु ने कहा, ''सच? यह सीखने के लिए तुम्हें इतना कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता थी? नाववाला केवल दो पैसे में नदी पार करा देता है!''

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 333 जून 2014

4 बोली रंगोली
6 एक था हाजी एक था नाजी
8 ओ अनदेखे...ओ अनजाने!
12 मार्क्वेज़
14 गाँव में कुछ बहुत बुरा होनेवाला है
16 मेरा पन्ना
19 बोले तो भाषा!
20 पगलाया हुआ घर
22 मायलिनोंग एवं लाइव रूट ब्रिज
28 चिचड़ी (टिक)
30 ताला
31 माथापच्ची
32 कलाकार
38 बोली रंगोली
39 चल उड़ जा रे पंछी!
42 चिट्ठी
43 चित्रपहेली
44 ओ धरती गडरियन रे

हाशिए के चित्र
अरविन्द गुप्ता की पुस्तक
फन विद लीव्ज़ *से साभार*

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

आवरण चित्र
चित्रः शोभा घारे

सम्पादकीय सलाहकार
रेक्स डी रोज़ारियो

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

इस अंक में

14

पर जैसे ही मैं जागी
तो मुझे लगा कि
इस गाँव के साथ
कुछ बुरा
होनेवाला है।

8

तब मैंने सोचा
कि क्यों न मैं अपने इस अनदेखे,
अनाम दोस्त को अपनी तस्वीरों से ही तलाशूँ।

22

"हाँ, इनका नाम दिसम्बर
और मेरी माँ का नाम है
फेस्टिवल।
यहाँ ऐसे ही नाम रखे जाते हैं।
आपको गाँव में वोडाफोन,
आइडिया, एयरटेल
जैसे नाम भी
मिल जाएँगे।"

6

नाजी साहब समझे
कि थानेदार साहब
डाँस करने गए हैं।

30

आयशा ने मुझसे
जीभ सटाई और चुपके-से
अपने खिलौनों की
डलिया में रख लिया।

4

यहीं खड़ा था दोस्त मेरा
मेरी कॉपी में लिखता था
आँख खुली तो कहीं नहीं है
बन्द आँखों से दिखता था
- गुलज़ार

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
मिताली अहीर
वरुण ग्रोवर
मिहिर
प्रभात
कमलेश यादव

सदस्यता शुल्क

एक प्रति:	30.00	(व्यक्तिगत)
	50.00	(संस्थागत)
वार्षिक:	300.00	(व्यक्तिगत)
	500.00	(संस्थागत)
तीन साल:	800.00	(व्यक्तिगत)
	1350.00	(संस्थागत)
आजीवन:	4000.00	(व्यक्तिगत)
	6000.00	(संस्थागत)

सभी डाक खर्च हम देंगे।
चन्दा (एकलव्य के नाम से बने)
मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
भोपाल के बाहर के चैक में
80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर,
भोपाल, म.प्र. 462 016
फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108
e mail - chakmak@eklavya.in
e mail - circulation@eklavya.in
www.chakmak.eklavya.in
www.eklavya.in

इशिता जैन,
पाँचवीं,
डीएवी, गुड़गाँव

बोली रंगोली

दोस्तो, शुक्रिया!
इतने मन से इस कॉलम में भागीदारी के लिए। इस बार चित्र भेजने में तुमने थोड़ी कंजूसी की। हमें सिर्फ ढाई सौ चित्र मिले। गुलज़ार साब के पसन्दीदा पाँच चित्र यहाँ पेश हैं। इन पाँचों चित्रकारों को उपहार में चकमक की एक साल की सदस्यता मिलेगी। सोलह चित्र और भी हैं जो बहुत सधे हैं। इन्हें तुम पेज 38 पर देख सकते हो।

पहले पाँच

कमसीना,
नौ वर्ष,
दिगन्तर, जयपुर

शुभम,
बारह वर्ष,
मंज़िल, दिल्ली

रिजुल मदान,
चौथी,
डीएवी, गुड़गाँव

बोलती पेंसिल

यहीं खड़ा था दोस्त मेरा
मेरी कॉपी में लिखता था
आँख खुली तो कहीं नहीं है
बन्द आँखों से दिखता था
- गुलज़ार

जुलाई की पंक्तियाँ हैं ..

पग पग पग पग करते करते
पूरे पहाड़ पे चढ़ती है
एक तरफ से बढ़ती है और
एक तरफ से घटती है

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 14 जून तक मिल जाए। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना। हमारा पता है -
चकमक, एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल -16 (फोन - 09425010115)

रिशिका बाहरी, सातवीं, डीपीएस, लुधियाना

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

गुप्तचर विभाग के बड़े अफसर नाजी साहब औचक निरीक्षण के लिए दिल्ली से जैसलमेर पहुँचे। रेलगाड़ी से उतरकर वे सीधे थाने गए।

शाम का समय था। थाने में कोई नहीं था – न अर्दली, न सन्तरी, न सिपाही, न कोतवाल। अचरज में भरे नाजी साहब भीतर घुसे। एकदम भीतर के कमरे में एक मेज़ पर सर झुकाकर काम करता मुंशी हाजी नज़र आया।

"थानेदार साहब कहाँ हैं? हम दिल्ली से आए हैं।" नाजी ने रौब से पूछा।

हाजी मुंशी ने नाजी को ऊपर से नीचे तक देखा और बोला, "थानेदार साहब तो नाचने गए हैं होकम!"

नाचना जैसलमेर और बीकानेर के बीच बसे एक गाँव का नाम है। वहाँ से बस आती है तो लोग कहते हैं नाचनेवाली बस आ गई या नाचनेवाली सवारियाँ उतर रही हैं।

लेकिन यह बात नाजी साहब को मालूम नहीं थी। वे समझे कि थानेदार साहब डाँस करने गए हैं।

दोबारा पूछा, "कहाँ गए हैं?"

"होकम नाचने।"

"और डिप्टी साहब?"

"होकम वो भी नाचने गए हैं।"

"एसपी साहब तो होंगे। उन्हें फोन लगाओ।"

"होकम एसपी साहब भी नाचने गए हैं।"

"हद्द हो गई! तुम मेरी कलेक्टर साहब से बात करवाओ।"

हाजी मुंशी ने चुपचाप कलेक्टर साहब का नम्बर मिला दिया।

लेकिन कलेक्टर साहब के घर से जवाब मिला कि साहब तो नाचने गए हैं।

परेशान होकर नाजी साहब ने पूछा, "ये चल क्या रहा है? सब नाचने गए हैं!!"

हाजी मुंशी समझाता हुए बोला, "होकम! आज मंत्रीजी आ रहे हैं न नाचने, इसलिए सब नाचने पधारे हुए हैं!"

अब नाजी साहब भी बेवकूफ तो थे नहीं। समझ गए कि नाचने या नाचना या वह जो भी है, किसी जगह का ही नाम होगा।

मुस्कराते हुए बोले, "ठीक है। सब नाचने गए हैं तो फिर मैं भी नाचने जाता हूँ।"

चित्रः अतनु राय

हाजी और नाजी बचपन के दोस्त थे, और धँधे में साझीदार भी।

लेकिन हाजी बीमार पड़ गया। बीमारी लाइलाज थी। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। हाजी मृत्यशय्या पर पड़ा था। और नाजी ने उसे एक मिनट के लिए भी अकेला नहीं छोड़ा। चौबीसों घण्टे उसका ख्याल रखा। किसी और को हाथ भी नहीं लगाने दिया।

एक सुबह हाजी बोला, "यार! लगता है मेरा समय आ गया है।"

"ऐसा क्यों कहता है? ऊपरवाले पर भरोसा रख!"

"तू मेरा एक काम करेगा?"

"हाँ, बोल!"

"मेरी अन्तिम इच्छा पूरी करेगा?"

"ज़रूर! बता।"

"देख ऐसा करना, मेरे जाने के बाद यह मकान सोहनलाल को दे देना।"

"सोहनलाल को? वो तो पागल है। खुद को तो सम्हाल नहीं पाता, इस इतने बड़े मकान को क्या सम्हालेगा? ऐसा करेंगे, मकान सोहनलाल को नहीं, मोहनलाल को देंगे।"

"अच्छा, मेरी सोने-चाँदी की जो दुकान है पुरानी मण्डी में, वह रमेश को दे देना।"

"यार, रमेश रहता है सिंगापुर में। वह कैसे दुकान सम्हालेगा? मेरे ख्याल से दुकान रमेश को नहीं, सुरेश को देना ठीक रहेगा।"

"अच्छा तो फिर ऐसा करना, मेरे बैंक में जो भी पैसा है, सब मेरी पत्नी कमला को दे देना।"

"यार बुरा मत मानना, पर कमला भाभी के हाथ में इतना पैसा देना ठीक रहेगा? अगर यह पैसा कमला भाभी को देने की बजाय उनकी बहन सरला जी को दे दिया जाए तो ज़्यादा अच्छा नहीं रहेगा?"

अचानक हाजी पलंग पर उठकर बैठा और नाराज़ होते हुए बोला, "एक बात बता! मर कौन रहा है? तू या मैं?"

ओ अनदेखे... ओ अनजाने !

बात 2012 की है। साल शुरू हुआ ही था कि मुझे जयपुर के एक अस्पताल के दस्तावेज़ीकरण का काम मिला। यह एक लम्बा चलनेवाला काम था। अब मेरा काफी समय अस्पताल में तस्वीरें खींचने में गुज़रने लगा था।

मैं अस्पताल की पूरी तस्वीर पेश करना चाहता था। चाहता था कि उसका कोई भी पहलू छूट न जाए।

चन्दन गोम्स

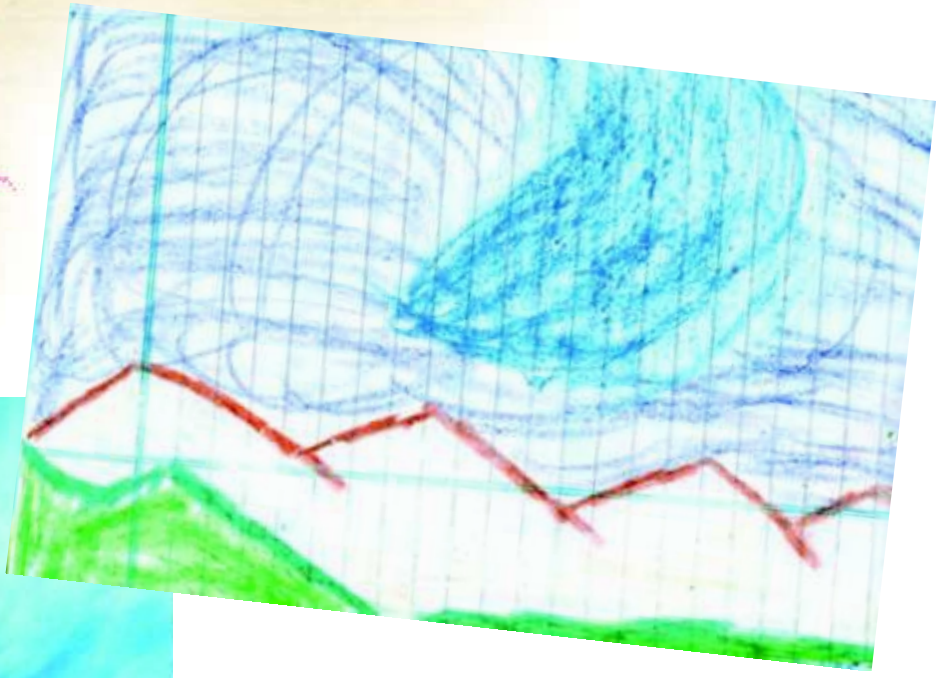

इसी दौरान एक दिन मैं अस्पताल के अवेदना आश्रम पहुँचा। यहाँ ज़्यादातर ऐसे मरीज़ रहते थे जो अब दवा के दायरे से बाहर पहुँच चुके थे। जिनके लिए बस दुआ ही की जा सकती थी। आश्रम की दूसरी मंज़िल पर मुझे एक नोटबुक मिली। उस पर कोई नाम नहीं लिखा था। जाने किसकी थी! मैंने उसे खोला। वो पहाड़ों के चित्रों से भरी पड़ी थी। अलग-अलग आकार, साइज़ और रंगों के पहाड़ थे – भूरे, लाल, नीले और हरे पहाड़। कहीं पहाड़ों के सामने नदी बह रही थी। कहीं पहाड़ किसी घाटी को समेटे थे। कहीं पहाड़ उँचाके आसमान छू रहे थे। और कहीं वे बादलों के पार चले गए थे। मैं अचम्भित था। पन्ने पलटता चला गया। उस नोटबुक से एक जुड़ाव सा महसूस हो रहा था। मैंने उसे अपने पास ही रख लिया।

अब मैं उसी के बारे में सोचता रहता। किसने बनाए होंगे ये पहाड़? मुझ पर जैसे उस चित्रकार को ढूँढने की धुन-सी सवार हो गई थी। निजता बनाए रखने की अस्पताल की अपनी सख्त नीतियाँ थी। इसके चलते मुझे वहाँ के मरीज़ों के रिकॉर्ड नहीं दिखाए गए। मैं आश्रम में रहनेवाले लगभग सभी से मिला – मरीजों से, वहाँ काम करनेवालों से, आने-जानेवालों से। पर किसी से कुछ पता न चला।

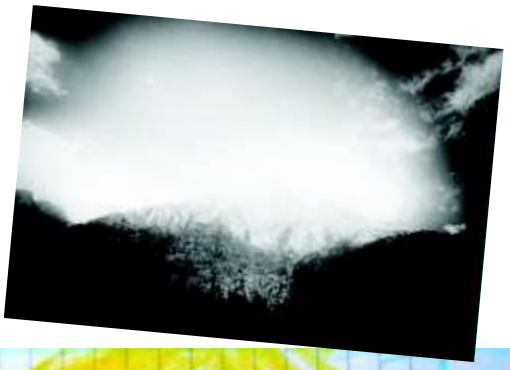

तब मैंने सोचा कि क्यों न मैं अपने इस अनदेखे, अनाम दोस्त को अपनी तस्वीरों से ही तलाशूँ। ऐसी तस्वीरें खींचूँ जिनमें उसके चित्र नज़र आएँ। मुझे नहीं मालूम मैं ऐसा क्यों करना चाहता था। मुझे बस इतना मालूम था कि मैं ऐसा करना चाहता था। जल्द ही मैं पहाड़ों के बीच था। महीनों मैं वहीं रहा। तस्वीरें खींचता।

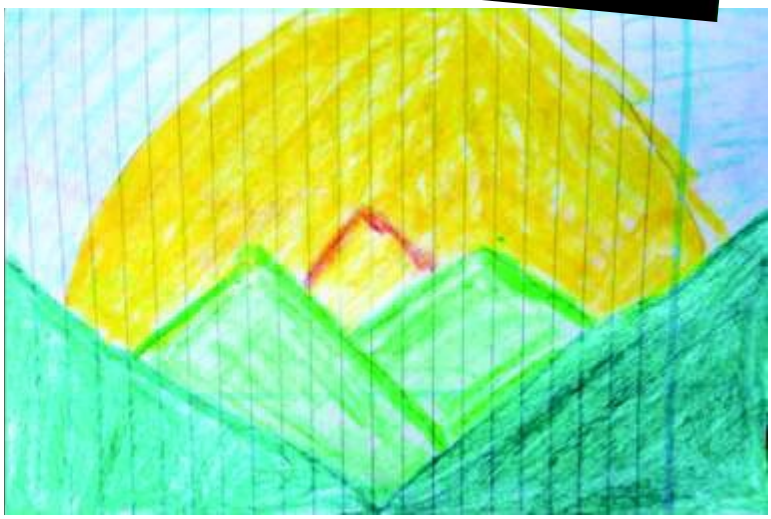

इस दौरान अस्पताल में अपने दोस्त का सुराग पाने की मेरी खोज जारी रही। और फिर उस दिन मुझमें उम्मीद जगी जब मैं आशा से मिला...

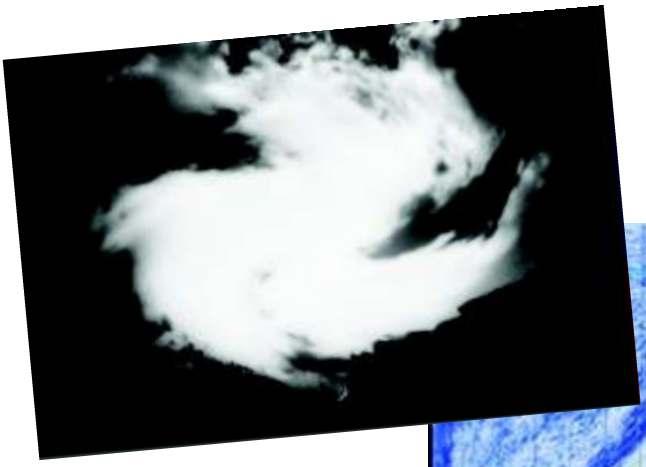

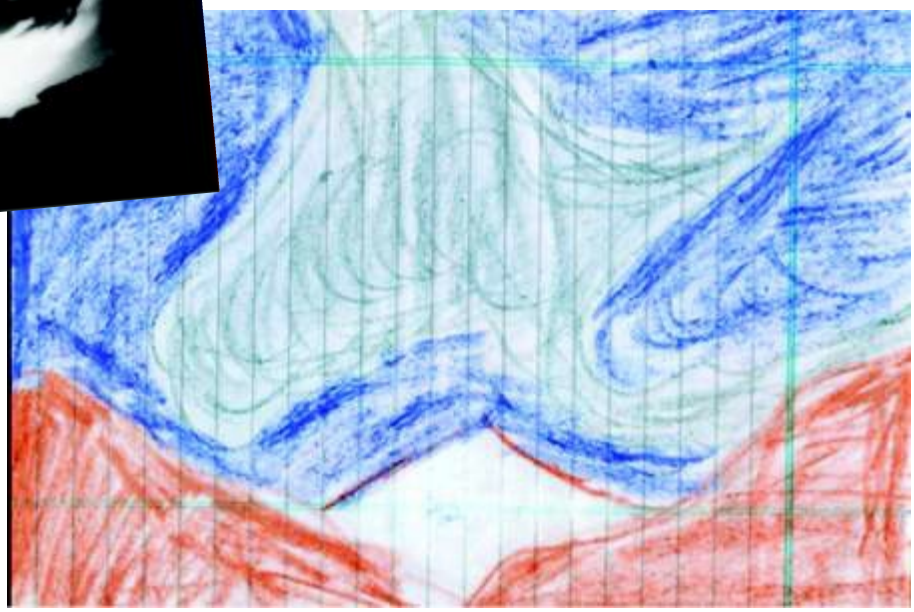

कभी-कभी बेचैनी इतनी बढ़ जाती कि मैं आपे से बाहर हो जाता। पर हर बार वह नोटबुक मुझे तसल्ली देती...मुझे शान्त कर जाती।

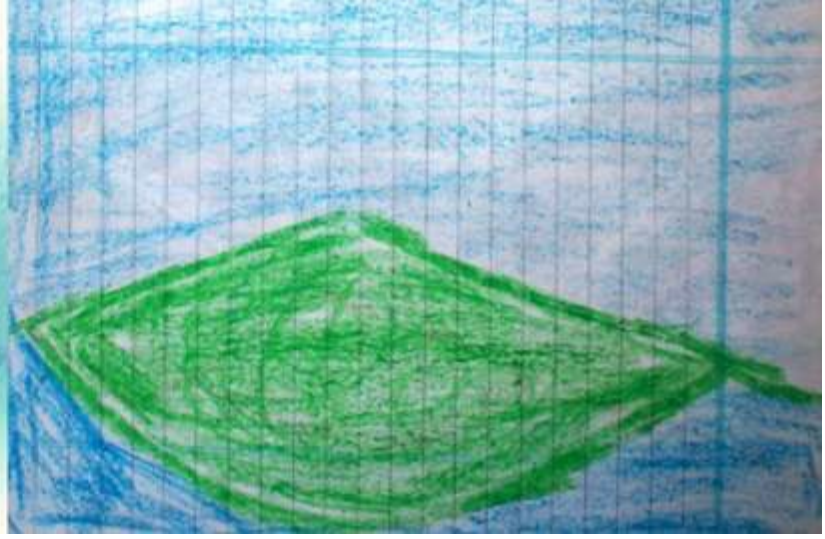

आशा नर्स की ट्रेनिंग लेने यहाँ आई थी। वो एक ऐसी लड़की की देखरेख करती थी जिसे चित्र बनाना अच्छा लगता था। मेरे बहुत कहने पर भी वो उसका नाम याद नहीं कर पाई। इसी बीच कई महीने बीत गए। आखिर नवम्बर 2012 में आशा ने अस्पताल के रिकॉर्ड में उसका नाम पता ढूँढ लिया। फिर भी वो पूरी तरह से निश्चित नहीं थी कि यही वो है जिसे मैं ढूँढ रहा था। खैर, मेरे मन में कोई दुविधा नहीं थी। मुझे जितना पता चला था काफी था।

28 जनवरी 2013 के दिन मैं कोटा (राजस्थान) के एक छोटे-से गाँव पहुँचा। आसपास पूछने पर पता चला कि जिसे मैं तलाश रहा था वो अब इस दुनिया में नहीं। उसे गुज़रे कोई दस महीने हो चुके हैं। और तभी से उसका परिवार गाँव छोड़ गया है।

उसके पड़ोसी-रिश्तेदार मुझे गाँव के बाहर बनी उसकी कब्र पर ले गए। उसी के चित्रों जैसी सुन्दर... यहीं मुझे उसका नाम पता चला – आइनी हसीना बानो।

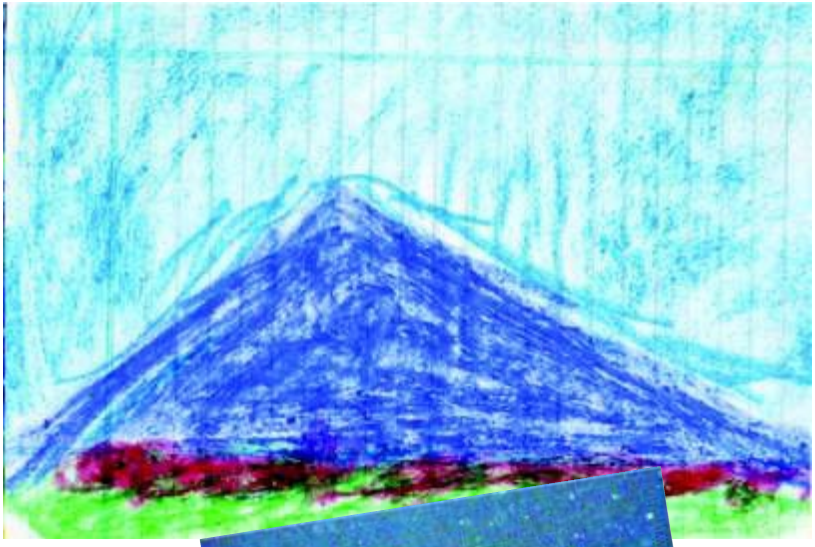

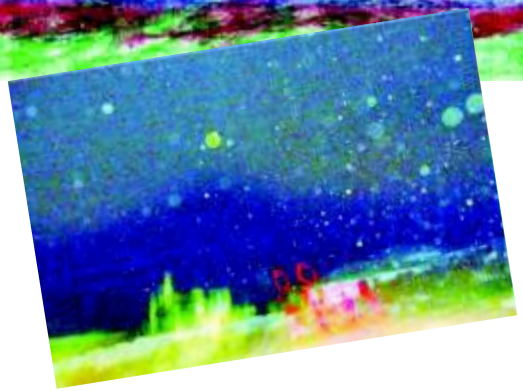

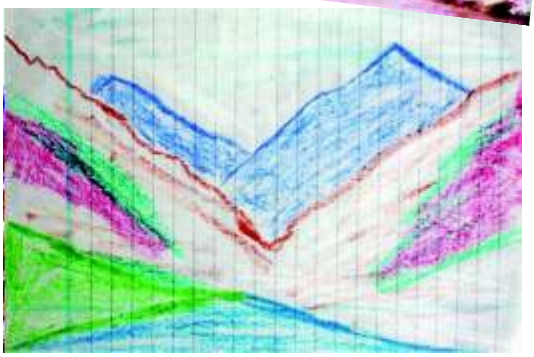

किसे तलाश रहा था मैं अब तक? वो तस्वीरें मैंने क्यों खींची? क्या मेरी यात्रा का अब कोई अर्थ नहीं रहा?

पहले जो मैं उसके बारे में सोचता था, महसूस करता था वो उससे कैसे अलग है जो मुझे अब महसूस हो रहा है – अब जब मुझे पता है कि वो इस दुनिया में नहीं है।

मौत किसी जज़्बे को कैसे बदल देती है! शायद वो मेरे ख्यालों में दो एकदम अलग सोच बनकर रहती थी – एक जिसमें मिलने की उम्मीद थी और दूसरे में अब उसका न होना था।

मेरे लिए कौन-सा असल था? हमारी दोस्ती की नींव किसमें थी? ये सारी यादें किस हिस्से में जाएँगी? इस किस्से को किसी मुकाम तक तो पहुँचाना ही था! और इसका मुझे एक ही रास्ता सूझा – उसके परिवार तक पहुँचना।

मैंने गाँव में रह रहे उसके रिश्तेदारों की मदद ली – 20 अगस्त 2013 के दिन मैं उसके पिता से मिला। दिल्ली के एक बाहरी इलाके में वे एक झुग्गी में रह रहे थे। उन्होंने दुखी मन से कहा कि वे उसके लिए कुछ कर नहीं पाए। उसके जीते जी वे उसकी कद्र नहीं कर पाए और अब जब वो नहीं है, वो उसकी यादों को भी नहीं सहेज पा रहे हैं। उन्होंने मुझे उसकी गुड़िया, टूटे हुए कुछ क्रेयॉन, उसकी पासपोर्ट साइज़ की एक फोटो – सब दे दिए। वो सब जो उसके पास थे कभी, अब मेरे पास हैं।

ये कैसा अजब सफर था!

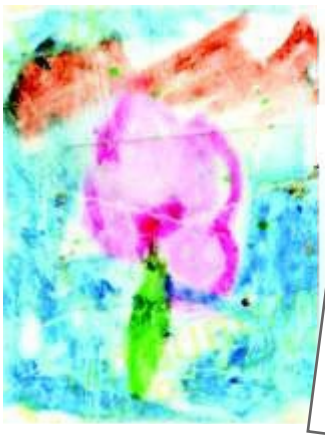

गेब्रियाल गार्सिया मार्क्वेज़

उदयन वाजपेयी

कोलम्बिया लातिन अमरीका का महत्वपूर्ण देश है। यह हमेशा से राजनैतिक उथल-पुथल के लिए जाना जाता है। अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों आदि ने इस देश के पारम्परिक ताने-बाने को बुरी तरह से क्षत-विक्षत कर दिया था। इस देश में लम्बे समय तक गृह युद्ध होते रहे हैं। इसी देश में बीसवीं शती के शायद सबसे लोकप्रिय उपन्यासकार गेब्रियाल गार्सिया मार्क्वेज़ का जन्म हुआ। उनका बचपन अपने टेलिग्राफ अफसर पिता के साथ न बीतकर, अपने नाना-नानी के साथ बीता। मार्क्वेज़ की नानी उन्हें तरह-तरह की भूतोंवाली कहानियाँ सुनाया करती थीं। नाना फौज में कर्नल रहे थे। वे मार्क्वेज़ को युद्ध और वीरता की घटनाएँ बताया करते थे। मार्क्वेज़ का सारा बचपन इन दो तरह के किस्सों के बीच निर्मल जलधारा की तरह बहता रहा। बाद के वर्षों में वे स्कूली अध्ययन के लिए नाना-नानी के लम्बे-चौड़े घर और छोटे-से कस्बे से कोलम्बिया के बड़े शहर, वहाँ की राजधानी बोगोटा चले गए। यह शहर उनके लिए बिलकुल पराया और कहीं अधिक बड़ा था। वे यहाँ अपने को बेहद अकेला और सबसे टूटा हुआ महसूस करते थे। इस अकेलेपन में ही वे पहले कविताओं की ओर और फिर उपन्यासों की ओर मुड़ गए। वे स्कूल के बाद का लगभग सारा समय लातिन अमरीका के महान कवि रूबिन डोरियो और कुछ अन्य जाने-माने कवियों की कविताएँ पढ़ते रहते थे। बाद के वर्षों में वे लातिन अमरीकी, स्पहानी, अमरीकी और अन्य युरोपीय उपन्यासों के स्पहानी भाषा में हुए अनुवाद पढ़ने लगे। इस बीच उन्होंने कानून की पढ़ाई छोड़ दी। और पास के एक शहर बैरेनक्वेला में आकर पत्रकारिता करने की चेष्टा करने लगे। वे एक ऐसी मित्र-मण्डली के साथ हो गए जिसमें सभी लोग रात-दिन साहित्य की पुस्तकों का अध्ययन करते थे। अपने इन मित्रों के साथ मार्क्वेज़ भी संसारभर के साहित्य के अध्ययन और उस पर विचार-विमर्श में जुट गए।

इन्हीं वर्षों में जब उन्होंने चेकोस्लोवाकिया के महान जर्मन लेखक फ्रेंज काफ्का की प्रसिद्ध कहानी "कायान्तरण" (मेटामॉर्फोसिस) पढ़ी जिसकी पहली पंक्ति में ही यह लिखा था कि जब ग्रेगर सामसा जागा, उसने पाया कि उसका शरीर तिलचट्टे के शरीर में बदल गया है। यह पढ़ते ही मार्क्वेज़ को लगा कि यह

तो किस्सा कहने का वही ढंग है जो उसकी नानी का था। तब मार्क्वेज़ को यह अनुभव हुआ कि वे भी नानी के दिखाए मार्ग से कहानी लिखने का अपना मार्ग खोज सकते हैं। यह बात याद रखने की है कि इस महान उपन्यासकार को उपन्यास और कहानियाँ लिखने की प्रेरणा अपनी नानी के उन अजूबे किस्सों से मिली थी जिन्हें अधिकांश लोग सुनकर भूल जाते हैं। पत्रकार रहते हुए ही अपने काम के बाद मार्क्वेज़ दफ्तर में ही बचा हुआ समय बिताते थे क्योंकि उनके पास रात बिताने की कोई और जगह नहीं थी। यहाँ रहते हुए ही उन्होंने शुरुआती कहानियाँ और छोटे उपन्यास लिखे। पर इनके अनोखे होने के बावजूद इन्हें प्रसिद्धि नहीं मिली। पर कुछ ही वर्षों बाद मार्क्वेज़ ने अपना अनोखा उपन्यास लिखा। इस उपन्यास ने उपन्यास लिखने की शैली को शायद हमेशा के लिए बदल दिया। इस उपन्यास का नाम है "सौ वर्ष का एकान्त" (*हन्ड्रेड ईयर्स ऑफ सॉलिट्यूड*)। इस उपन्यास के छपते ही मार्क्वेज़ का नाम विश्व के महान उपन्यासकारों में शामिल हो गया। इसकी लाखों प्रतियाँ प्रकाशित हुईं। संसारभर के साहित्य प्रेमी पाठकों ने इसे पूरी रुचि से पढ़ा। इसके संसार की लगभग सभी भाषाओं में अनुवाद हुए। इसके बाद मार्क्वेज़ का जीवन कठिन होता चला गया। वे इतने अधिक प्रसिद्ध हो गए थे कि उनसे मिलने के लिए सालभर पहले समय लेना होता था। इस प्रसिद्धि के बाद भी वे हर दिन सुबह नौ बजे से दोपहर के तीन बजे तक लिखने का कार्य किया करते थे। उनकी यह दिनचर्या तीस-चालीस वर्षों तक चली। इतने कठिन परिश्रम से ही यह सम्भव हुआ कि उन्होंने एक के बाद दूसरा सुन्दर उपन्यास लिखा। कई सुन्दर कहानियाँ लिखीं।

मार्क्वेज़ ने जीवनभर पत्रकारिता भी की है। यह अवश्य है कि बाद के वर्षों में वे पत्रकारिता जीवनयापन के लिए नहीं करते थे क्योंकि वे उन बहुत कम लेखकों में थे जो अपना जीवन यापन अपनी किताबों के सहारे कर लेते थे। मार्क्वेज़ ने लतिन अमरीका की स्थिति पर कई रपट लिखीं। इन रपटों से लातिन अमरीका की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति का पता पूरे विश्व को चला।

मार्क्वेज़ की अन्तिम कृति एक छोटा उपन्यास *मैमॉयर्स ऑफ माई मेलनकली वोर्स* थी। इसके ठीक पहले उन्होंने अपनी आत्मकथा भी लिखी थी। इस आत्मकथा में उन्होंने अपनी माँ, अपने पिता, नाना-नानी, बचपन के दोस्तों और परिवेश के बारे में बड़ी गहराई से लिखा है। इस आत्मकथा में उन्होंने लातिन अमरीका की बिगड़ी हुई स्थिति के विषय में भी विस्तार से विचार किया है। कुछ वर्षों पहले ही मार्क्वेज़ को पता चला कि उन्हें कैंसर हो गया है। इसके बाद से उन्होंने लिखना लगभग बन्द कर दिया। वे अपना अधिकतर समय पढ़ने और अपनी पत्नी मर्सेडीज़ के साथ बिताने लगे। यह उनके जीवन का बेहद प्रशान्त समय था। कुछ हफ्ते पहले 17 अप्रैल, 2014 को मैक्सिको में उनका देहान्त हो गया। यह बात याद रखने की है कि जितनी प्रसिद्धि अपने जीते जी मार्क्वेज़ को मिली, उतनी मनुष्यता के इतिहास में शायद ही किसी और लेखक को उसके जीते जी मिली हो। मार्क्वेज़ को याद करने का सबसे अच्छा ढंग यह है कि उनकी उपन्यास और कहानियाँ पढ़ी जाएँ और उन पर विचार-विमर्श किया जाए।

गाँव में कुछ बहुत बुरा होनेवाला है

गैब्रियल गार्सिया मार्केज़

एक बहुत छोटे-से गाँव की सोचो जहाँ एक बूढ़ी औरत रहती है। उसके दो बच्चे हैं। पहला सत्रह साल का और दूसरा चौदह का। वह उन्हें नाश्ता दे रही है। उसके चेहरे पर चिन्ता झलक रही है। बच्चे उससे पूछते हैं कि क्या हुआ तो वह बोलती है – मुझे नहीं पता। पर जैसे ही मैं जागी तो मुझे लगा कि इस गाँव के साथ कुछ बुरा होनेवाला है।

दोनों यह बात सुनकर हँस देते हैं। वो कहावत है न कि जो कुछ भी होता है, बड़े-बूढ़ों को उसका आभास पहले ही हो जाता है। लड़का पूल खेलने चला जाता है। वह एक बेहद आसान गोले को जीतने ही वाला होता है कि दूसरा खिलाड़ी बोल पड़ता है – मैं एक पेसो की शर्त लगाता हूँ कि तुम इसे नहीं जीत पाओगे।

वहाँ पर हर कोई हँस देता है। लड़का भी हँस देता है। वह गोला खेलता है और हार जाता है। शर्त का एक पेसो चुकाता है। सब उससे पूछते हैं कि इतना आसान दाँव वह कैसे हार गया। वह बोलता है, "बेशक, पर मुझे आज सुबह कही गई माँ की एक बात याद आ गई थी। कि इस गाँव के साथ कुछ बहुत बुरा होनेवाला है।"

सब लोग उस पर हँस देते हैं। पेसो जीतने वाला शख्स अपने घर लौट आता है। घर पर उसकी माँ, पोती और कोई रिश्तेदार है। वह खुशी का इज़हार करते हुए कहता है, "मैंने यह पेसो दामासो से बेहद आसानी से जीत लिया क्योंकि वह मूर्ख है।"

"कैसे?"

"इसलिए कि वह एक आसान-सा दाँव इसलिए हार गया क्योंकि सुबह उसकी माँ ने उसे कहा था कि अपने गाँव के साथ कुछ बुरा होनेवाला है।"

"तुम बुज़ुर्गों का मज़ाक उड़ा रहे हो। पर कभी-कभी उनकी बातें सच भी निकल जाती हैं।" जीतनेवाले की माँ ने कहा।

उसकी रिश्तेदार उनकी इस बातचीत को सुनती है और गोश्त खरीदने चली जाती है। वह कसाई से बोलती है, "एक पाउण्ड गोश्त दे दो।" अभी दुकानदार गोश्त तौल ही रहा था कि वह बोली, "बेहतर है कि दो पाउंड... मुझे कुछ ज़्यादा दे दो। क्योंकि सुनते हैं कि गाँव के साथ कुछ बुरा होनेवाला है।"

थोड़ी देर बाद एक अन्य महिला एक पाउण्ड गोश्त खरीदने पहुँचती है। दुकानदार उससे बोलता है, "आप दो ले जाइए। क्योंकि लोग यहाँ तक कहते फिर रहे हैं कि कुछ बहुत बुरा होनेवाला है। लोग उसके लिए तैयार हो रहे हैं। सामान खरीदकर रख रहे हैं।"

वह बूढ़ी महिला बोली, "मेरे तो कई सारे बच्चे हैं। तुम मुझे चार पाउण्ड दे दो।"

वह चार पाउण्ड गोश्त लेकर चली जाती है।

कहानी को खींचने की बजाय बता देता हूँ कि उस दुकानदार का सारा गोश्त अगले आधे घण्टे में साफ हो गया। वह कुछ और गोश्त का इन्तज़ाम करता है। और उसे भी पूरा का पूरा बेच देता है। अफवाह फैलती चली जाती है। एक वक्त ऐसा जाता है जब पूरा गाँव कुछ होने का इन्तज़ार करने लगता है। लोग जैसे सुन्न पड़ जाते हैं।

अचानक, दोपहर के बाद हमेशा की ही तरह गर्मी पड़ने लगती है। कोई कहता है, "देखा, आज किस कदर गर्मी पड़ रही है।"

"लेकिन इस गाँव में तो हमेशा से गर्मी पड़ती रही है। इतनी गर्मी, जिसमें गाँव के ढोलकिए अपने बाजों को टार से पोतकर रखते थे और उन्हें छाँव में बजाते थे। क्योंकि धूप में बजाने पर वे टपककर बरबाद हो जाते।"

जो भी हो, कोई बोलता है, "इस घड़ी इतनी ज़्यादा गर्मी तो पहले कभी नहीं हुई थी।"

इसी वीरान-से गाँव के खुले चौपाल में तभी एक छोटी चिड़िया आती है। कोई कहता है, "अरे देखो, चौपाल में कोई चिड़िया है।" डर से कँपकँपाता पूरा का पूरा गाँव उस

छोटी-सी चिड़िया को देखने चौपाल में उमड़ पड़ता है। लेकिन दोस्तो! चिड़ियाँ तो वहाँ हमेशा से ही आती रही हैं।

"हाँ, लेकिन वे भरी दोपहरी में तो कभी नहीं आईं।"

गाँववाले तनाव से घिर जाते हैं। हर कोई वहाँ से चले जाने को बेकरार हो उठता है। लेकिन ऐसा करने का साहस नहीं जुटा पाता।

"मैं तो चला...." कोई चिल्लाता है।

वह अपने डेरा-डंगर समेटकर बैलगाड़ी पर निकल पड़ता है। सब लोग उसे जाते देखते हैं। इस बीच लोग कहने लगते हैं, "अगर यह इतनी हिम्मत दिखा सकता है, तो फिर हम लोग भी चल निकलते हैं।" और सच में पूरा का पूरा का गाँव खाली हो जाता है। लोग अपना सामान, जानवर सब कुछ समेटकर गाँव से निकल पड़ते हैं। तभी एक आदमी कहता है, "ऐसा न हो कि इस अभिशाप का असर हमारे घर में छूट गई चीज़ों पर पड़े।" वह कुछ सोचता है और उनमें आग लगा देता है। फिर दूसरे भी अपने-अपने घरों में जाते हैं और उसे आग के हवाले कर आते हैं।

अफरा-तफरी मच जाती है। जैसे कि किसी युद्ध के लिए लोग जा रहे हों। उन सबके बीच से हौले-से वह महिला भी गुज़रती है जिसे आज सुबह ऐसा लगा था कि गाँव में कुछ बुरा होनेवाला है। वह फुसफुसाती है, "मैंने बताया था न कि कुछ बहुत बुरा होनेवाला है। और लोगों ने क्या कहा था... मैं पागल हूँ।"

दोस्तो, यह चित्र तुम्हें कैसा लगा? इस चित्र में एक महिला के सिर पर अपने गाँव को छोड़कर जाते लोगों को दिखाया गया है। इस कहानी का नायक या नायिका कौन है? क्यों? कहानी में एक अफवाह से पूरे गाँव को तबाह होते दिखाया गया है। क्या कहानी उस महिला को इसका ज़िम्मेवार ठहराती है जिसे पूर्वाभास हुआ था? क्या चित्र भी उस महिला को वैसे ही प्रस्तुत कर रहा है जैसे कहानी ने किया है? तुम इस कहानी को कैसे चित्रित करना चाहोगे?

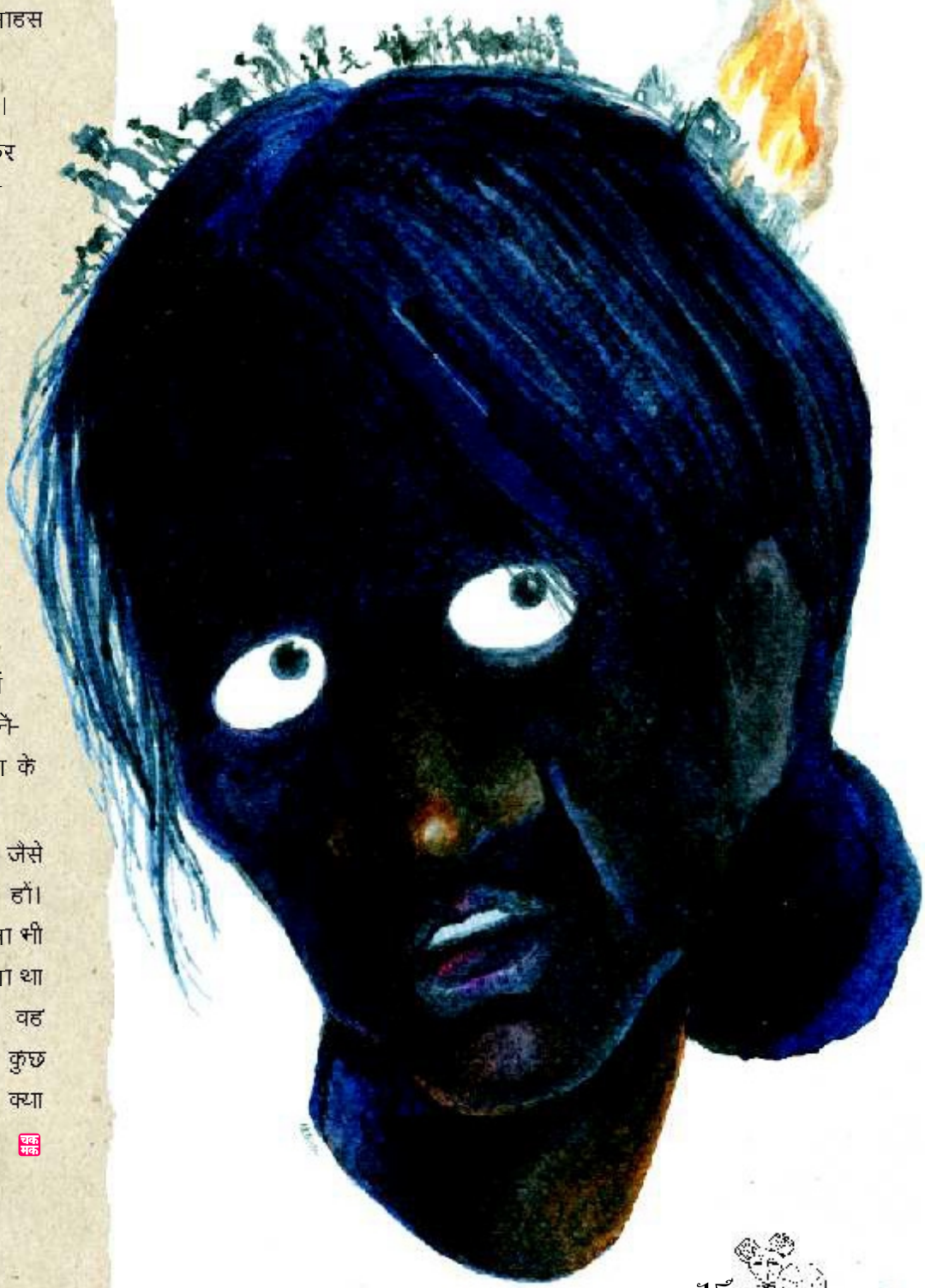

– वृन्दा बंसल, पाँचवीं,
डीपीएस लुधियाना,
पंजाब

जन्मदिन पर मिला नया दोस्त

मेरा जन्मदिन 27 मई को मनाया जाता है। सुबह मेरी दीदी मुझे एक मुक्का मारती है। मैं उसे उलटे पाँच मुक्के मारता हूँ। इस तरह मेरा दिन खिल उठता है। फिर मैं नहा-धोकर तैयार होकर स्कूल जाता हूँ। वहाँ सारे बच्चे मुझे जन्मदिन की बधाइयाँ देते हैं। युसुफ मुझे कागज़ का फूल या बत्तख बनाकर देता है। और यश फुसकी बम की तरह फुस-फुस करके मुझे बहुत हँसाता है। जब खाने की घण्टी बजती है तो मैं पूरे विद्यालय में अपने दोस्तों के साथ टीचर्स को मिठाइयाँ बाँटता हूँ। जब घर पहुँचता हूँ तो पेड़ के पास रह रही गिलहरी को मेरे घर से खाना लाकर खिलाता हूँ। मेरे घर पहुँचते ही मेरी दीदी हमेशा मुझे कमरे में बन्द कर देती है। पर मैं हमेशा वहाँ से भागकर तैयारियाँ देखता हूँ। शाम को जब वह मुझे बुलाकर तैयारियाँ दिखाती है पर मुझे तो सब पहले से पता होता है। यह सोचकर मुझे बड़ा मज़ा आता है। फिर शाम को सब मेहमान आते हैं और मैं केक काटता हूँ। इस बार तो एक कुत्ता भी दौड़ता हुआ मेरे घर आ गया और मुझे चाटने लगा। तब मुझे याद आया कि कुछ दिन पहले मैंने उसे गड्ढे में गिरने से बचाया था। मैं उसे देखकर बहुत खुश हुआ। और मेरी दीदी मुझे चिढ़ाने लगी कि लो तुम्हारा एक नया दोस्त तुम्हें बधाई देने आ गया। मैं भी उसकी तरह चार पैरों पर खड़ा होकर कुत्ते की तरह भौं-भौं करने लगा और उसे दौड़ाने लगा। और सब लोग खूब हँसे।

– विभूम झा, चौथी, के के एकेडमी, लखनऊ, उ. प्र.

– ममता कुमारी, पाँचवीं, कुकड़ापानी, हरदा, मध्यप्रदेश

मेरा पन्ना

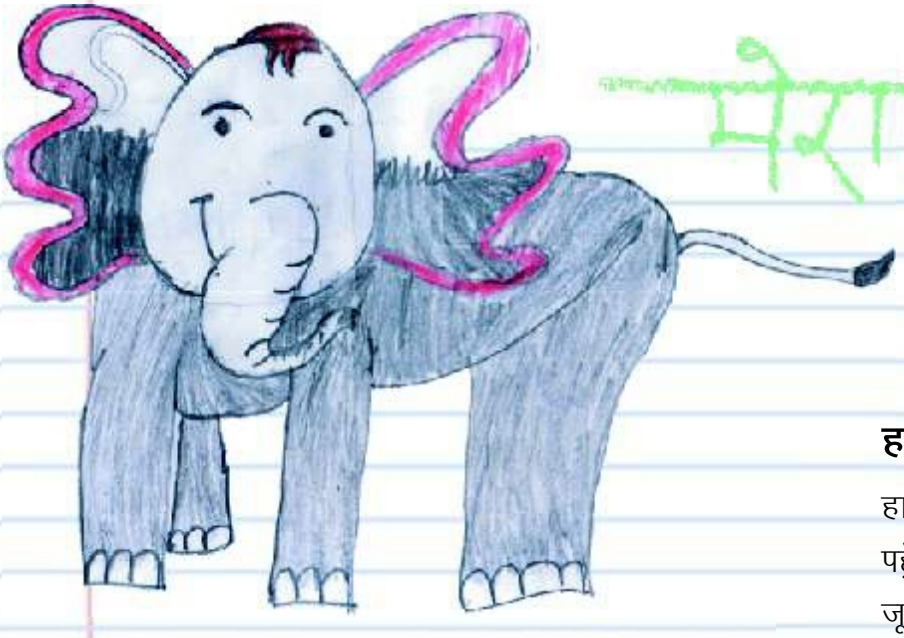

— *ओंकार कापसे, तीसरी, नेहरू इंग्लिश स्कूल, नान्देड़, महाराष्ट्र*

हाथी का जूता

हाथी दादा पकड़के माथा
पहुँच गए बाज़ार
जूते की दुकान देखकर
माँगे जूते चार
कालू जूतेवाला बोला
बड़ा तुम्हारा नाप
इतना बड़ा न जूता बनता
हाथी दादा कर दो माफ

—प्रस्तुतिः राजा, चौथी, अपना स्कूल, एवन भट्टा, कानपुर,

आम

सुन्दर और सजीला आम
कितना रंग-रंगीला आम
सबके मन को भाता आम
सबका दिल ललचाता आम

—प्रस्तुतिः शिल्पा, दूसरी, स्वामी विवेकानन्द स्कूल, लोधर, कानपुर, उ. प्र.

गर्मी का मौसम

चारों तरफ है आँधी देखो
धूप की है अलग मार
खाना पीना कुछ न भाता
लगती रहती प्यास
आम, तरबूज, खरबूज की
देखो छाई बहार
मौसम ने बदली चाल
हुए हम गर्मी से बेहाल
अब डाली पर बोल रही है
कोयल प्यारी
चारों तरफ है आँधी देखो
धूप की है अलग मार !!

—युतिका वोरा, रुशाली जैन, संजना और श्रेया, सातवीं, डी.पी.एस पुणे, महाराष्ट्र

— *सूर्यम जुनेजा, सातवीं, संस्कार वैली स्कूल, भोपाल, म. प्र.*

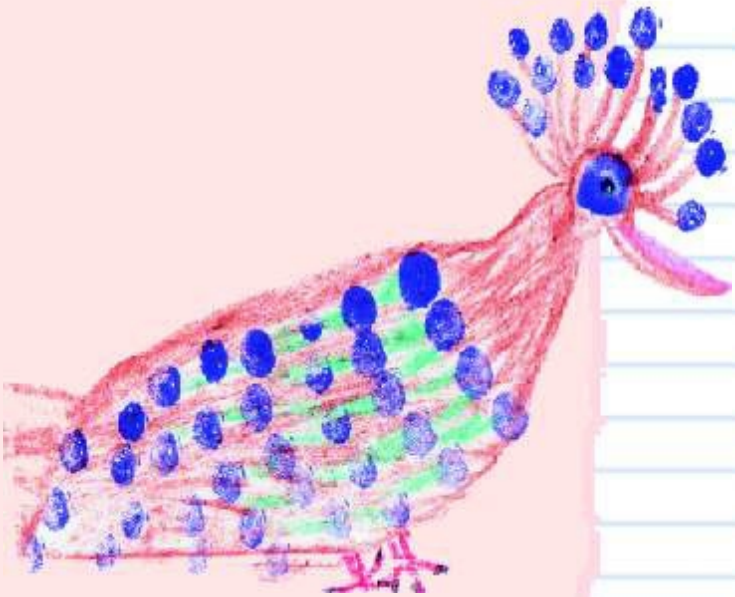

— *कपिल, तीसरी, ईजीएस स्कूल, हरदा, मध्यप्रदेश*

तलाश

बहुत पुरानी बात है, एक जंगल था। उसमें बहुत सारे जानवर रहते थे। उसमें एक पक्षी भी था। वह बहुत उदास था। उसके चार बच्चे थे। वह दूर जंगल में अपने बच्चों के साथ रहता था। एक दिन दाना लेने दूर जाकर आ रहा था तो उसके परिवारवालों में से उसे कोई भी दिखाई नहीं दिया तो वह परेशान हो गया और उनको ढूँढने लगा। अपने परिवार को ढूँढता-ढूँढता वह जंगल में बहुत दूर निकल गया। उसके पास ना तो खाने के लिए कुछ था ना पीने के लिए। वह उदास होकर एक पेड़ पर बैठ गया। सारे जानवर उससे पूछते तो वह उनको सारी बात बताता। फिर वहाँ के सारे जानवर उसके परिवार को ढूँढने का प्रयास करते हैं। उन्हें ढूँढते-ढूँढते चार-पाँच दिन लग गए। और फिर उस पक्षी के परिवारवाले उसे मिल गए। अब वह पक्षी उन सभी जानवरों के साथ रहने लगता है और सभी जानवरों को धन्यवाद भी देता है।

—आशिया, दिगन्तर स्कूल, जयपुर, राजस्थान

धान

धान है भई धान है
सबका यह धान है
धान आता काम में
धान बिकता दाम में

—पायल सिन्हा, चौथी, अजीमप्रेमजी स्कूल धमतरी, छत्तीसगढ़

सपने

सपने अच्छे-अच्छे
प्यारे हैं इनको बच्चे
रात को हैं यह दिखते
सुबह तारों की तरह छिपते
कभी डरावने कभी खूबसूरत
हर बार आते अलग-अलग
लगता है इन्हें भुला पाएँगे
पर होता नहीं है यह सच
कभी मिलता है उपहार
कभी जाते घूमने बाहर
कभी करते मज़ा
और कभी मिल जाती है सज़ा
उठना होता है सुबह
मन नहीं होता उठने का
पर होता है उठना
और भूलना पड़ता है वा प्यार सपना

—प्रेक्षा एवं तन्मय, प्रेसीडियम स्कूल, दिल्ली

— *अंशिता, दूसरी, रेडक्लिफ स्कूल, भुवनेश्वर, उड़ीसा*

बोले तो भाषा!

इन्द्राणी रॉय

एक कहानी है कि एक समय ऐसा था जब पूरी मानव जाति एक ही जगह रहती थी और एक ही भाषा बोलती थी। एक बार सब ने मिलकर सोचा कि क्यों न एक ऐसी मीनार बनाई जाए जो स्वर्ग तक पहुँचे। सब लोग मिलकर ऐसी मीनार बनाने लगे। मीनार धीरे-धीरे ऊँची और बहुत ऊँची बनती गई। जब ईश्वर ने ये देखा तो उन्हें लगा कि सारे फसाद की जड़ मनुष्य की भाषा है। इसी के कारण वे एक-दूसरे को समझ पाते हैं, अपनी सोच एक-दूसरे से बाँट पाते हैं और ऐसी योजनाएँ बना पाते हैं। इसलिए ईश्वर ने इन लोगों की भाषा अलग-अलग कर दी ताकि कोई एक-दूसरे की बात समझ न पाए। सब लोग अलग-अलग भाषाएँ बोलने लगे। किसी को कोई समझ न पाया और स्वर्ग तक पहुँचनेवाली मीनार कभी न बन पाई।

यह कहानी भाषा की ताकत बताती है। सोचो, मानव सभ्यता में जो सदियों से विकास हुआ है क्या वो बिना भाषा के हो पाता। कई आदि संस्कृतियों में भाषा को ईश्वर की देन माना जाता है।

मनुष्य का भाषा पा जाना एक चमत्कार ही तो है। वो क्या खास बात है मनुष्यों में कि प्राणी जगत में सिर्फ वे ही भाषा की क्षमता रखते हैं? जवाब हमें मिलता है उस समय से जब दो पाँवों पर चलनेवाले जन्तुओं का उद्भव हुआ, जब प्राइमेट्स हाथ का सहारा लिए बगैर चलने लगे।

इस परिवर्तन से खोपड़ी की आकृति बदलने लगी। स्वर यंत्र (larynx) अपनी जगह से नीचे आ गया। इससे कण्ठनली की आकृति में बदलाव आया जिससे कुछ व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण सम्भव हुआ। वैज्ञानिक मानते हैं कि 60 हज़ार साल पहले के निएन्डरथाल मानव में ये क्षमता दिखाई देने लगी होगी। सीधे खड़े होने का एक और परिणाम यह था कि ग्रसनी (pharynx) लम्बी हो गई। इससे आवाज़ बदलने लगी।

मनुष्य के दाँत, होंठ, जीभ की आकृति भी ऐसी है जिससे वो अलग-अलग ध्वनियों को निकाल पाता है। अन्य प्राइमेट्स की तरह उसके दाँत बाहर नहीं निकले हुए हैं। इससे वह फ़, व जैसी ध्वनियाँ निकाल पाता है। होठों की खास बनावट के कारण वह प, ब जैसी ध्वनियाँ निकाल पाता है। मनुष्यों के मुँह और जीभ दूसरे प्राइमेट्स की तुलना में छोटे हैं। इससे वे मुँह जल्दी खोल और बन्द कर सकते हैं और जीभ के द्वारा कई ध्वनियाँ पैदा कर पाते हैं।

इन सब से उच्चारण में सहायता मिल सकती है पर भाषा नहीं बन पाती। इसके लिए मनुष्य के दिमाग की एक रचना ज़िम्मेदार है। मनुष्यों का दिमाग दो हिस्सों में बँटा हुआ है। दाएँ और बाएँ हिस्से अलग-अलग काम करते हैं। भाषा बोलने और समझने का काम बायाँ हिस्सा करता है।

यह तो हुई मनुष्यों में भाषा सम्भव करनेवाली कुछ चीज़ें। पर वैज्ञानिक मानते हैं कि सिर्फ इनके होने से ही मनुष्यों में भाषा की उत्पत्ति नहीं हुई। भाषा का विकास मनुष्य के बचपन में अपने-आप ही हो जाता है तो क्या ये सम्भव है कि भाषा की कोई जीन (gene) मनुष्यों में मौजूद है? खोज अभी भी जारी है।

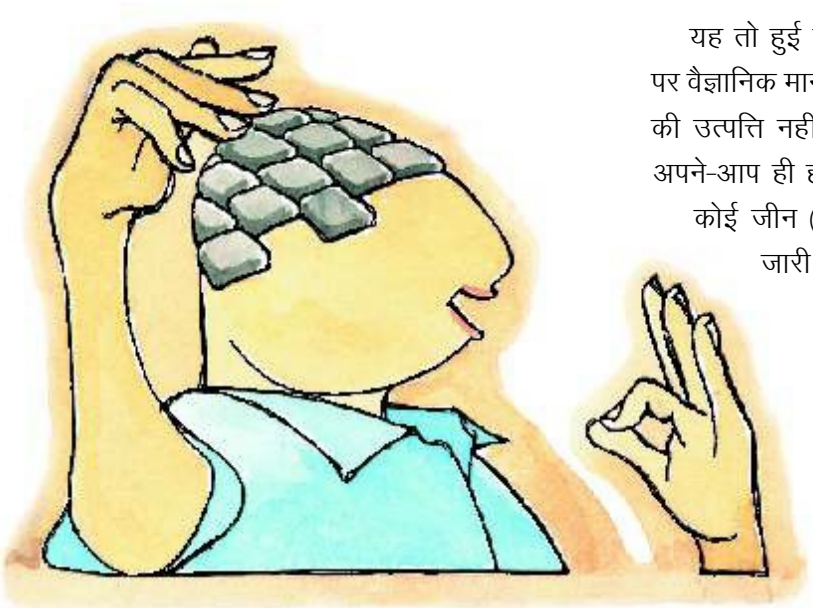

चित्रः दिलीप चिंचालकर

इरावती कर्वे

अनुवादः अलकनन्दा साने

पगलाया हुआ घर

"ओ माँ!" आवाज़ आई और उसके तुरन्त बाद ज़ोर-ज़ोर से रोना सुनाई दिया। मैं लगभग दौड़ती-सी गई। देखा छोटी का घुटना छिल गया था और वो बिलबिला रही थी।

"क्यों री, क्या हुआ? कहाँ लगी?"

"ऐसे ही दौड़ते-दौड़ते कुर्सी से टकरा गई।"

"छोरी! देखके नहीं चला जाता? चल ऊपर चल। दवा लगाती हूँ। घुटने की बजाय तुम लोगों की आँखों में दवा लगाना चाहिए। दिन में दस बार गिरते-पड़ते रहते हो। घर के ना तो दरवाज़े छोटे हैं, ना अँधेरा रहता है। फिर भी कैसे चलते हो भगवान ही जाने।" मुझे आज रोज़ की बजाय कुछ ज़्यादा ही गुस्सा आ रहा था। पिछले दो घण्टों में तीनों बच्चों को मैं दवा लगा चुकी थी। गौरी के घुटने पर पट्टी बाँधी और उसे जताया, "देख, अब ऐसे चली ना तो अच्छे से पिटेगी। और दवाई तो तू भूल ही जाना।"

फिर उस दिन सब खैरियत रही। दूसरे दिन छोटी का स्कर्ट सिल रही थी, तो आँगन से आवाज़ आई – देख मेरे पास क्या है? और तभी गौरी हमेशा की तरह दौड़ती हुई आती दिखी। उसकी साँस फूल रही थी। उसे देख मुझे लगा कि अब वह मेज़ के किनारे से टकराने ही वाली है। मैंने हाथ का काम छोड़ा और "रुक...रुक .." कहते उठी तो जैसे कोई चमत्कार हो गया। मेज़ ज़रा-सी पीछे खिसक गई और गौरी मेरे ऊपर आ गिरी। शुक्र था कि उसकी आँख बच गई थी। पर मेज़ कैसे खिसक सकती है? ज़रूर मुझे कुछ भ्रम हुआ था, खैर! बच्ची बच गई, यही बहुत था।

लेकिन मेज़ का अपने आप खिसकना मेरे दिमाग से जा नहीं रहा था। इसी वजह से वो क्या बता रही थी मेरी समझ में बिलकुल नहीं आ रहा था। मैं उसे डाँटना भी भूल गई थी। उसी शाम नन्दोबा अपने स्कूल की किसी घटना को बड़ा रस लेकर सुना रहा था। पहले वह कमरे के बीचोंबीच खड़ा था, लेकिन फिर हमेशा की तरह पीछे की ओर सरकने लगा ताकि कहानी खत्म होते ही दरवाज़े से बाहर चला जाए। तभी मैंने देखा कि दरवाज़े का एक पल्ला बन्द था और नन्दू का सिर

शेजारी

मराठी भाषा के इस शब्द का मतलब होता है – पड़ोसी।

इस कॉलम में हर महीने मराठी साहित्य की रचनाएँ तुम पढ़ रहे हो। गौरी कानितकर की मदद से यह कॉलम सम्भव हुआ है। उनकी संस्था यूनीक फीचर्स बड़ों व बच्चों के लिए साहित्य तथा अन्य सामाजिक मुद्दों पर पत्रिकाएँ तथा किताबें प्रकाशित करती है।

उससे टकराने ही वाला था। मैं "नन्द्या नन्द्या" चिल्लाने ही वाली थी कि पल्ला अपनेआप खुलकर दीवार से टिक गया और नन्द्या महाराज सही सलामत दरवाज़े से बाहर हो गए। दरवाज़े के पास तो कोई नहीं था, तो दरवाज़ा किसने खोला? या फिर मुझे भ्रम हुआ? मैंने धीरे-से सबकी ओर देखा, लेकिन किसी के चेहरे से नहीं लगा कि जैसे कुछ हुआ हो। यह सब इतना अनूठा और हैरान कर जानेवाला था कि मैं किसी को कुछ भी बताने की स्थिति में न थी। आखिर मैंने सोचा कि देखें आगे क्या होता है! अगले दो दिनों तक तो मुझे यही लगता रहा कि मैं कोई सपना देख रही हूँ। बच्चों का सिर टकराए इसके पहले ही दीवारें अन्दर की ओर झुक जाती थीं, बगीचे में पड़े पत्थर ठोकर लगने से पहले ही रास्ते से हट जाते थे। कुर्सी, मेज़, पलंग, अलगनी जल्दी-से पीछे खिसक जाती या सिकुड़ जाती। इन चार दिनों में कोई भी चोटिल नहीं हुआ था।

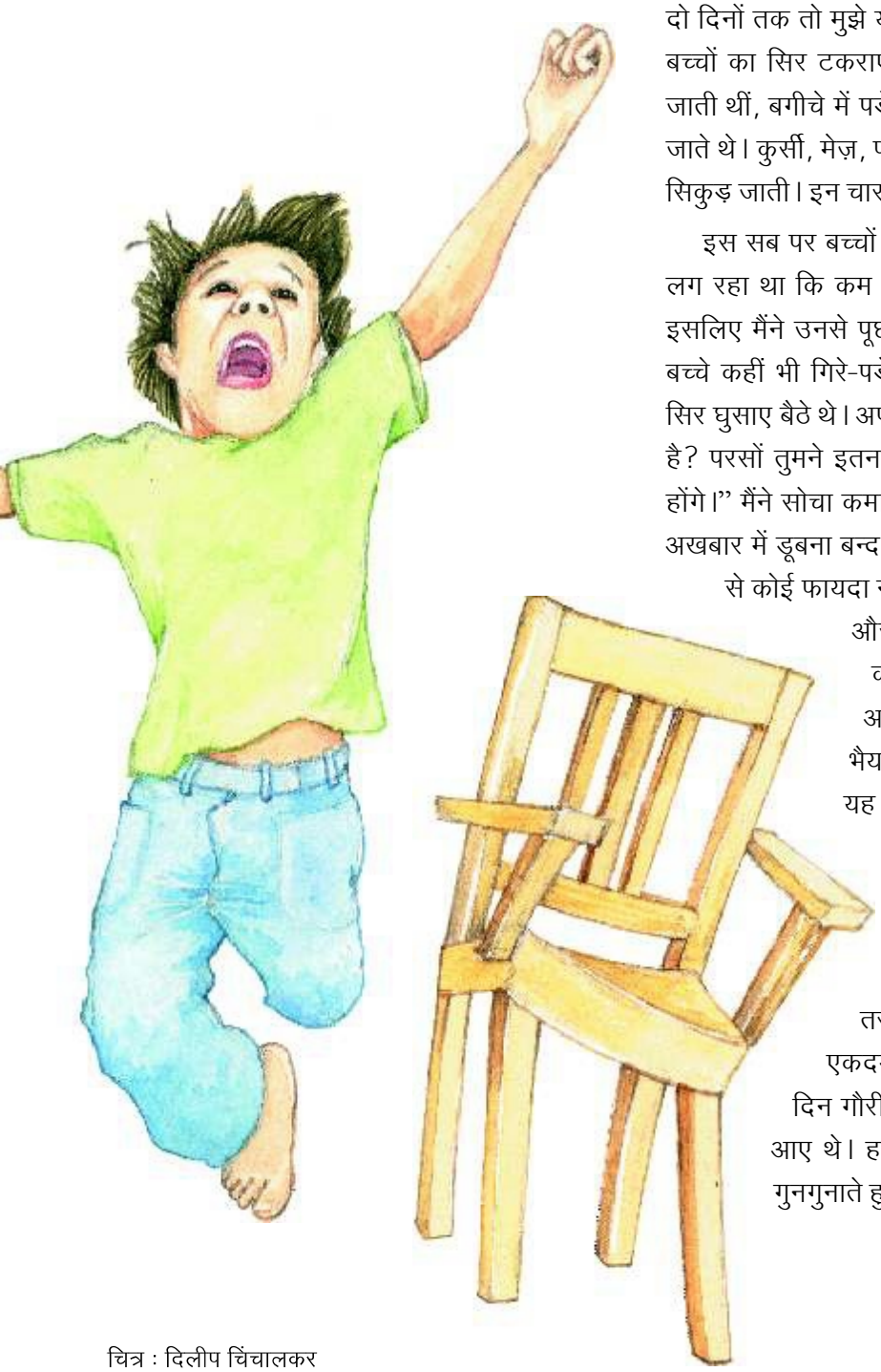

इस सब पर बच्चों का ध्यान गया हो, कहना मुश्किल है। पर मुझे लग रहा था कि कम से कम उनके बाबूजी को तो दिखा ही होगा। इसलिए मैंने उनसे पूछा, "ध्यान दिया आपने कि पिछले दो दिनों से बच्चे कहीं भी गिरे-पड़े नहीं? आश्चर्यजनक है ना?" वे अखबार में सिर घुसाए बैठे थे। अपनी गर्दन उठाकर बोले, "इसमें ऐसा क्या खास है? परसों तुमने इतना डाँटा था इसलिए थोड़ा सम्हलकर खेल रहे होंगे।" मैंने सोचा कमाल है, मेरे डाँटने से बच्चे सीधे हो जाएँ और ये अखबार में डूबना बन्द कर दें तो मुझे और क्या चाहिए? इनको पूछने से कोई फायदा नहीं यह जानकर मैं सोचने लगी कि इस घर को और घर की चीज़ों को आखिर हुआ क्या है? घर में कोई नहीं है यह देखकर एक दिन मैंने इन सारी अजीवित वस्तुओं से यह तक कह डाला कि – भैया! आप सब मिलकर बच्चों को सम्हाल रहे हैं, यह तो बहुत अच्छा है, पर इस वजह से वे दिनोंदिन बेफिक्र होते जा रहे हैं। आपके इस प्यार की वजह से आगे उन पर पछताने की नौबत आ सकती है। पर इसका कोई फायदा नहीं हुआ। इतने दिनों तक सामान्य घर की तरह बर्ताव कर रहे इस घर को क्या हो गया है? एकदम पगला-सा गया है। मुझे याद आया, जिस दिन गौरी का घुटना छिल गया था, उसी दिन जीजाजी आए थे। हम लोग चाय पी रहे थे उसी समय गौरी देवी गुनगुनाते हुए प्रगट हुईं और स्टूल से टकरा गईं।

(शेष भाग पेज 27 पर)

चित्र : दिलीप चिंचालकर

मायलिनोंग एवं लाइव रूट ब्रिज

अनीता सक्सेना

हाल ही में मुझे मेघालय जाने का मौका मिला। मेघालय (यानी बादलों का घर) की राजधानी शिलांग है। वहाँ पहुँचकर मुझे पता चला कि शिलांग से 75 किलोमीटर दूर घने जंगलों के बीच बसा है एशिया का सबसे साफ-सुथरा गाँव कहा जानेवाला मायलिनोंग। और मैंने वहाँ जाने का मन बना लिया।

हमारी यात्रा शुरू हुई। जल्द ही हम पहाड़ों के ऊपर थे। कहीं पहाड़ी झरने गिर रहे थे तो कहीं घने जंगल थे। मैंने देखा कि लोगों ने बाँस को आधा काटकर उसकी नाली बना दी थी। इससे पहाड़ से तेज़ धार में गिरनेवाले पानी को उसका सहारा मिल गया था।

आसमान में रुई के फाहों जैसे बादल उड़ रहे थे। पहाड़ पर चढ़ते वक्त हमारी कार के काँच पर नन्ही-नन्ही बूँदें दिखने लगीं। मैंने कहा, "अरे, बारिश आ गई!" तो गोबिन कार रोककर बोला, "नहीं मैडम जी यह बारिश नहीं बादल हैं। आप बाहर निकलकर देखिए ज़रा।" और सच में बाहर बिलकुल बारिश न थी। कार के ऊपर से बूँद-बूँद मिलकर पानी की धारा बहने लगी थी। लेकिन ऐसे बाहर हाथ फैलाओ तो कुछ हाथ नहीं आता था। अद्भुत नज़ारा था! चारों ओर सफेद बादलों का समन्दर लहरा रहा था। जहाँ हम खड़े थे वहाँ से दस मीटर की दूरी पर कुछ भी नज़र नहीं आ रहा था। सड़क से गुज़रती सारी गाड़ियों ने अपनी इमरजेंसी लाईट जलाई हुई थीं। सामने से भी गाड़ियाँ आ रही थीं। सभी बहुत ही धीमे और एक के पीछे एक चल रही थीं। ताकि कोई दुर्घटना न घट जाए। पहाड़ी रास्ता था। एक तरफ हज़ारों मीटर गहरी खाई थी दूसरी तरफ पहाड़।

धुँध में रास्ता कुछ समझ में नहीं आ रहा था। एक छोटी-सी जगह पर गोबिन ने गाड़ी रोककर एक टैक्सीवाले से द्वाकी का रास्ता पूछा। द्वाकी मुख्य सड़क पर बसा एक छोटा-सा शहर है। टैक्सीवाला बोला, "मैं वहीं जा रहा हूँ। मेरे पीछे-पीछे चले आओ।" मैंने कहा कि हमें मायलिनोंग जाना है। वह बोला, "रास्ता यही है। चले आओ।" सारी बातचीत गोबिन के माध्यम से असमी में ही हो रही थी। हिन्दी यहाँ कम ही बोलते हैं। धुँध में हम उसके पीछे-पीछे चल दिए।

आम जनता के लिए सड़क किनारे बने साफ-सुथरे शौचालय

आगे जाकर पोनटोंग नाम की एक जगह आई जहाँ से एक रास्ता द्वाकी जा रहा था और दूसरा मायलिनोंग। वहाँ उस सूमो के ड्राईवर ने गाड़ी रोकी और काँच खोलकर इशारा किया कि इस तरफ चले जाइए। और हमारी गाड़ी वहाँ से अठारह किलोमीटर दूर मायलिनोंग की तरफ बढ़ चली।

मायलिनोंग में हमारा गाइड हेनरी बना। हेनरी यहाँ घूमने आए लोगों को गाँव दिखाने और उनके रहने-खाने की व्यवस्था का काम करते हैं। वे अँग्रेज़ी और खासी दो भाषाएँ जानत्ते हैं। क्यों नहीं तुम भी चलते हमारे साथ मायलिनोंग के सफर में....

ट्रैवल मैगज़ीन *डिस्कवर इंडिया* ने 2003 में मायलिनोंग को एशिया का सबसे साफ गाँव घोषित किया था। इसके बाद 2005 में इसे भारत का सबसे साफ गाँव घोषित किया गया। यहाँ कचरा डालने के लिए जगह-जगह बाँस की टोकरियाँ लगाई हुई हैं। इन में इकट्ठा हुए कचरे से खाद बनाई जाती है।

हेनरी सबसे पहले हमें ट्री हाउस और बाँस के कॉटेज दिखाने ले गया। बेहद खूबसूरत थे वो। उन्हें हेनरी के पिता ने बनाया था। ट्री हाउस बनाने के लिए सड़क के दोनों ओर के बड़े-बड़े पेड़ों को बाँस से जोड़ा गया था। उसके ऊपर मचान जैसा एक घर बना था। नीचे बाँसों की सीढ़ी से एक घुमावदार रास्ता बना था। सारा काम बाँस का ही था। यहाँ तक कि बाँधने के लिए भी बाँस की ही पतली छालें इस्तेमाल की गई थीं। मैं ट्री हाउस में एकदम ऊपर तक चढ़ गई। ट्री

पेड़ों पर बने घर की छत पर जाने का रास्ता।

हाउस की छत से दूर एक समन्दर दिखा। यह बांग्लादेश में आई बाढ़ का पानी है। बांग्लादेश यहाँ से सिर्फ तीन किलोमीटर दूर है। लोग पैदल ही वहाँ आना-जाना कर सकते हैं।

वॉह थिलोंग –
खासी में नदी को वॉह कहते हैं

नीचे पहाड़ पर लकड़ी के बड़े-बड़े खम्बों के सहारे बनी कॉटेज। दो बड़े-बड़े कमरे, शौचालय और एक डायनिंग रूम था। सब कुछ लकड़ी और बाँस का। बाँस की चटाइयों की दीवारें और छत सुपारी व झाड़ू के पत्तों से बनी है। छत इतनी मज़बूत और वॉटर प्रूफ है कि लगातार होनेवाली बारिशों में भी एक भी बूँद पानी अन्दर नहीं टपकता।

लाइव रूट ब्रिज

हम लोग लाइव रूट ब्रिज के रास्ते की ओर चल दिए। गाँव के अन्दर से ही नीचे जंगल की तरफ उतरना था। शुरू में तो कोई दिक्कत नहीं हुई पर जब खड़ी चट्टानों से उतरना पड़ा तो फिसलने की चिन्ता हुई। मुझे यह ख्याल बार-बार सताने लगा कि चढ़ते समय क्या हाल होगा? खैर, हम धीरे-धीरे नीचे उतरते गए। कहीं-कहीं पर पक्की सीढ़ियाँ भी बनी थीं। चारों तरफ घना जंगल था। हमारे सिवा वहाँ और कोई नहीं दिख रहा था। शायद कम ही लोग आते होंगे यहाँ।

नदी के तेज़ बहाव की आवाज़ आ रही थी। जल्दी ही रूट ब्रिज हमें दिखाई दे गया। अद्भुत दृश्य था – नीचे तेज़ बहती वॉह थिलोंग और उसके ऊपर लाइव रूट ब्रिज यानी रबर (बड़ प्रजाति के वृक्ष) के पेड़ों की मोटी-मोटी जड़ों को जोड़-जोड़ कर बनाया पुल। ऐसी जड़ें जिन्हें कहीं से भी बाँधा नहीं गया था। जो स्वभाविक रूप से जुड़ी हुई थीं। पुल अच्छा-खासा चौड़ा था। उस पर बीच में मिट्टी बिछी हुई थी और गोल-गोल पत्थर रखे हुए थे।

हेनरी ने बताया कि यह पुल बहुत मज़बूत है। तीस लोग भी खड़े हो जाएँ तो इसका कुछ नहीं बिगड़नेवाला। हम लोग पुल पार कर उसके दूसरी तरफ पहुँचे। वहाँ दूसरे गाँव जाने के लिए पहाड़ काटकर सीढ़ियाँ बनाई गई थीं। हम लोगों ने चारों तरफ से पुल का मुआयना किया। हर तरफ से वो और ज़्यादा सुन्दर दिखता। यह कुदरत नहीं इंसान का करिश्मा था।

इस बीच हम हेनरी के पिता से मिले। मैंने उनको अभिवादन किया तो उनके चेहरे की झुर्रियों के बीच एक भोली-सी मुस्कान छा गई। उनकी उम्र करीब साठ-बासठ होगी। वे सिर्फ खासी भाषा जानते थे। हेनरी हमारा दुभाषिया बना।

पिता दिसम्बर और माँ फेस्टिवल।

मैंने पूछा, "आपका नाम क्या है?"

वे कुछ बोलते इससे पहले हेनरी बोल पड़ा, "दिसम्बर।"

"दिसम्बर?" मैं मुस्कुरा दी। मुझे लगा मैंने कुछ गलत सुना है।

"हाँ, मैडम जी। इनका नाम दिसम्बर और मेरी माँ का नाम है फेस्टिवल। यहाँ ऐसे ही नाम रखे जाते हैं। आपको गाँव में वोडाफोन, आइडिया, एयरटेल जैसे नाम भी मिल जाएँगे। जो नाम सुने जाते हैं वही रख दिए जाते हैं। यहाँ महीनों के नाम पर, सप्ताह के दिनों के नाम पर भी लोगों के नाम हैं।"

दिसम्बर जी से मेरी बातचीत शुरू हुई। उन्होंने बताया कि उन्होंने अपने दादा से इस पुल के बारे में सुना था। खासी जनजाति के लोगों का मकसद ऐसे पुल बनाकर दो गाँवों को जोड़ना है। यह पुल नोवेत गाँव से रिवाई गाँव को जोड़ता है।

पुल बनाने की इस परम्परा को एक विशेष जनजाति के लोगों ने पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रखा है। आज वे कहाँ पुल बना रहे होंगे कोई नहीं जानता। एक पुल बनने में करीब सौ साल लग जाते हैं। लाइव रूट ब्रिज बनाने के लिए सबसे पहले रबर के पौधों को सोचे-समझे तरीके से लगाया जाता है। जब पौधे बड़े होने लगते हैं और उनकी हवाई जड़ें (सपोर्टिंग रूट्स) बाहर लटकने लगती हैं तब उनको बाँसों से चोटी की तरह गूँथते हुए चलते हैं। यह कोई एक दिन का काम नहीं होता। न ही एक महीने का। क्योंकि जीवित पेड़ों की जड़ें जब तक बढ़ नहीं जातीं तब तक उन्हें बाँधा नहीं जा सकता है। रस्सी की तरह बढ़ती ये जड़ें चिपकती जाती हैं। एक-दूसरे से बँधती जाती हैं। धीरे-धीरे बाँसों की जगह बदलती जाती है। हमने जो पुल देखा वह करीब तीन सौ साल पुराना है।

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न था। "ऐसे पुल और कहाँ-कहाँ हैं?" मैंने पूछा। उन्होंने बताया कि चेरापूंजी के पास डबल डेकर पुल हैं यानी एक पुल के ऊपर एक और पुल।

अचानक मुझे ट्री हाउस याद आया। मैंने उनसे इशारे में कहा कि आपने बहुत ही सुन्दर घर बनाया है तो वे मुस्करा उठे। "कितने दिन लगे इसे बनाने में?" मैंने पूछा।

हेनरी ने बताया, "दो महीने।"

मैंने पूछा कि आपने ट्री हाउस के सहारे के लिए जो बड़े-बड़े पेड़ों के तने लगाए हैं वे किस पेड़ के हैं? वे बोले, "कटहल के।"

दिसम्बर जी से बात करते-करते समय का पता ही नहीं चला। बाहर अँधेरा हो गया था और बारिश भी हो रही थी। वैसे भी यहाँ रात जल्दी हो जाती है। हेनरी ने जब कहा कि आप खाना खाकर सो जाइए तो हम फौरन मान गए। हम थक भी बहुत गए थे।

यहाँ मिट्टी के चूल्हे में खाना बनाया जाता है। बारिश बहुत होने के कारण लकड़ियाँ सूखती नहीं हैं। इसलिए चूल्हे के ऊपर एक झूले में रखकर इन्हें सुखाया जाता है।

हेनरी की बहन सारा ने बहुत स्वादिष्ट दाल-चावल और परवल की सब्ज़ी बनाई थी। उसे खाकर हम लोग गहरी नींद सो गए।

सारी रात बारिश होती रही। सुबह उठे तो बिजली गायब थी। बाहर बादलों ने हमें चारों तरफ से घेरा हुआ था। अच्छा हुआ जो कल हम रूट ब्रिज देख आए थे। आज तो जाना सम्भव ही न होता।

यहाँ चूँकि बारिश बहुत होती है इसलिए हरियाली ज़्यादा और धूल कम है। यहाँ खासतौर पर सुपारी, काली मिर्च, तेज पत्ता, बाँस, फूल-झाड़ू, कटहल, लीची, अनन्नास, सन्तरा, केला आदि के पेड़ मिलते हैं।

घने जंगल और पहाड़ों के बीच बसे होने के बावजूद मायलिनोंग किसी भी कमी का एहसास नहीं कराता। यहाँ लोग पॉलिथीन का प्रयोग बिलकुल नहीं करते हैं। हेनरी ने बताया कि मायलिनोंग में 94 परिवार बसे हैं। यहाँ कुल 506 लोग रहते हैं। साक्षरता की दर यहाँ सौ प्रतिशत है। गाँव में दो स्कूल हैं एक खासी और एक अँग्रेज़ी माध्यम का। सभी बच्चे पढ़ने जाते हैं। आठवीं के बाद की पढ़ाई के लिए बच्चे शिलांग जाते हैं।

मायलिनोंग में एक छोटी-सी दुकान है जो साबुन, मोमबत्ती, माचिस वगैरह जैसी छोटी-मोटी ज़रूरतों को पूरा करती है। मायलिनोंग से दो टैक्सियाँ हर रोज़ सुबह शिलांग जाती हैं और शाम को वापस आती हैं। यहाँ के लोग आटा, दाल, चावल, हरी सब्ज़ियाँ तथा खाने-पीने का हर सामान शिलांग से ही लाते हैं। यहाँ सब्ज़ी, अनाज कुछ भी पैदा नहीं

पिचर प्लांट छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों को अपनी तरफ आकर्षित करता है और जब वे उसके पास पहुँच जाते हैं तो झट-से ढक्कन बन्द कर लेता है।

होता। हाँ, मछली, सूअर और मुर्गी ज़रूर पाले जाते हैं। हेनरी ने बताया कि शिलांग से मायलिनोंग के बीच सड़क बने बारह साल हुए हैं। इसके पहले आना-जाना और मुश्किल था। गाँव के मुखिया को सभी हैड मैन कहते हैं।

रूट ब्रिज के रास्ते में मैंने बड़े बच्चों को एक रोचक खेल खेलते हुए देखा। केले के एक तने को उन्होंने ज़मीन में गाड़ दिया था। दूर एक रेखा खींची हुई थी जिसके पीछे खड़े होकर वे नुकीले तीर से उस तने को भेदने की कोशिश कर रहे थे। आसपास खड़े बच्चे निशाना लग जाने पर तालियाँ बजाकर उनका उत्साह बढ़ा रहे थे।

हम भी इस अनूठी जगह के लिए मन ही मन तालियाँ बजाते हुए आगे बढ़ गए...

सभी फोटोः सुश्रुता श्रीवास्तव

पगलाया हुआ घर

(पेज 21 का शेष भाग)

मैंने हमेशा की तरह उसे डाँटा, तो जीजाजी ने उसे पुचकारा और समझा-बुझाकर खेलने भेज दिया। फिर मुझे भाषण पिलाया, "बच्चे फूल जैसे होते हैं। डाँट-डपट करने से वे मुरझा जाते हैं और उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता है और वे बौने रह जाते हैं। उन्हें जिस चीज़ से नुकसान हो, वह चीज़ हटा लेनी चाहिए।" मैंने कहा, "इसका मतलब तो यह हुआ कि घर की सारी चीज़ें ही हटा दें, तब भी कुछ हासिल नहीं होगा।"

वे बोले, "अरे! ऐसा मत बोलो। इस तरह की बातों से वे और ज़्यादा ठोकरें खाएँगे और उनमें हीन भावना उत्पन्न होगी।" फिर मैंने उनसे ज़्यादा बहस नहीं की। उनके जाते ही गौरी को कहीं चोट लग गई। मैंने उसे पीटने की धमकी दी। जीजाजी की बात कहीं घर ने मान तो नहीं ली? मैंने एक गहरी साँस ली और अपने कामों में जुट गई। बच्चों की लापरवाही बढ़ गई थी और सारा घर उनके लिए रास्ता छोड़कर उनका मनोविकास करने में लगा हुआ था। उस दिन मैं और गौरी बगीचे में थे। तभी सामने से कोई चिल्लाया, "गौरी, देख तो ये मछली कैसे कर रही है?" गौरी फाटक खोलकर दौड़ पड़ी। रास्ता पार करते समय वह हमेशा दोनों तरफ देखती थी, पर उस दिन न जाने क्या हुआ, उसने एकदम ही दौड़ लगा दी। चालक ने हॉर्न बजाया। ज़ोर-से ब्रेक दबाया। उसकी आवाज़ ने सबको चौंकाया और मैंने दौड़कर बच्ची को गाड़ी के सामने से खींचकर सीने से चिपटा लिया। वह घबरा गई थी। उसके होंठ सफेद पड़ गए थे और दिल की धड़कन साफ सुनी जा सकती थी। उसे थपथपाया और सामने चन्दू के यहाँ छोड़ आई। घर आकर सीधे छत पर गई। मैं घबरा गई थी, पर उससे भी ज़्यादा मुझे गुस्सा आ रहा था। मैंने रोते-रोते घर को और घर की चीज़ों से कहा, "देखा तुम लोगों के लाड़-प्यार का नतीजा? मैंने कहा था न बच्चे ज़्यादा लापरवाह और बेफिक्र हो जाएँगे? आज मेरी बेटी को कुछ हो जाता तो? भाड़ में गया मनोविकास। मेरे चिल्लाने से कोई उनकी बढ़त रुकती है भला? मूर्ख कहीं के। उनके माथे टकराएँगे। घुटने छिलेंगे। तभी वे चलना सीखेंगे। इसके बावजूद यदि अब भी तुम लोग बाज़ नहीं आए तो मैं बच्चों को हॉस्टल भेज दूँगी। फिर तुम लोगों को उनका हँसना-बोलना, रोना-धोना, लड़ना-भिड़ना कुछ भी नहीं सुनाई देगा। समझे?" तभी नीचे से आवाज आई, "ओ माँ! मर गया।" नन्द्या दरवाज़े से टकराया था और उसके माथे पर बड़ा-सा गुमड़ दिख रहा था। आँख ज़रा-सी बच गई थी। "चल रसोई में, तुझे हल्दी लगा दूँ।"

चिचड़ी
(टिक)

जोरजिए अगम्बैन

अनुवादः विनता विश्वनाथन

ईज़ीक्यूल (एक जर्मन जीवविज्ञानी) की किताबों में कभी-कभी ऐसे चित्र होते हैं जो सुझाते हैं कि यदि कोई साही, मधुमक्खी, मक्खी या कुत्ता मनुष्यों की दुनिया का कोई हिस्सा देखे तो उसे कैसा नज़र आएगा। ये प्रयोग उपयोगी हैं क्योंकि ये देखनेवाले में एक भ्रम भरा एहसास पैदा करते हैं। ऐसा इसलिए कि इंसान बेहद जानी-पहचानी जगहों को अचानक गैर-इंसानी आँखों/नज़रिए से देखने पर मजबूर हो जाता है। लेकिन इस भ्रम के एहसास ने कभी वो रूप नहीं पाया जितना ईज़ीक्यूल चिचड़ी (*Ixodes ricinus*) के बारे में लिखते हुए दे पाए।

इसकी शुरुआती पंक्तियों में कविता की-सी खनक सुनाई देती हैः

ईज़ीक्यूल ने जो कहा उसे ध्यान में रखते हुए चलो एक चिचड़ी की कल्पना करते हैं। गर्मियों का एक सुहावना दिन है। और एक चिचड़ी अपनी झाड़ी में लटकी है। सूरज की रोशनी में डूबी और जंगली फूलों के रंगों और खुशबुओं से घिरी। मधुमक्खियों और दूसरे कीटों की गूँजों और पक्षियों के गानों से घिरी चिचड़ी। लेकिन काव्यात्मकता तो यहीं पर खत्म हो जाती है, क्योंकि चिचड़ी इन सब चीज़ों को बिलकुल महसूस नहीं करती है।

बिना आँखोंवाली इस जीव की त्वचा रोशनी के प्रति संवेदनशील होती है। और सिर्फ इसी के सहारे वह अपनी चौकी (मंज़िल) तक पहुँच पाती है। और अपने शिकार के आने का इन्तज़ार करने लगती है। इस अँधे और बहरे डाकू को उसके शिकार के आने की खबर उसकी सूँघने की शक्ति से मिलती है। ब्यूटिरिक ऐसिड की महक सभी स्तनधारी जानवरों की चमड़ी में स्थित वसा ग्रंथियों (सैबेशियस ग्लैंड्स) से निकलती है। यह चिचड़ी के लिए संकेत का काम करती है। महक के आते ही बिना आगा-पीछा देखे वो अपनी चौकी से अपने शिकार पर गिर पड़ती है। अगर खुशकिस्मती से वह किसी गर्म चीज़ पर गिरती है तो समझो उसने अपना गर्म रक्तवाला शिकार पा लिया है। (गौरतलब है कि गर्म चीज़ का पता उसे अपने एक ऐसे अंग का इस्तेमाल करने से चलता है जो एक खास तापमान के प्रति संवेदी है।)। इसके बाद कम से कम बालोंवाली जगह तक पहुँचने के लिए और सिर को पूरी तरह शिकार की चमड़ी में धँसाने के लिए उसे ज़रूरत सिर्फ स्पर्श की होती है। अब वह धीरे-से गर्म खून को चूस सकती है।

अपने कुत्ते के साथ जंगल-बीहड़ में घूमनेवाले गाँव के हर व्यक्ति की मुलाकात उस छोटे-से कीट से ज़रूर हुई होगी जो किसी झाड़ी से लटके हुए अपने शिकार (मनुष्य या जानवर कोई भी) के इन्तज़ार में रहता है। ताकि उस पर गिरे और उसका खून पी डाले। यह जब अण्डे से निकलता है तो उसका विकास पूरा नहीं हुआ होता हैः उसके पास एक जोड़ी टाँगें और जननांग नहीं होते हैं। लेकिन इस अवस्था में भी घास की नोक पर टिककर वह छिपकलियों जैसे शीत-रक्तवाले (वातावरण के साथ तापमान बदलनेवाले) जानवरों पर वार करने की क्षमता रखता है। एक के बाद एक होनेवाले मोल्ट (समय-समय पर अपने बाहरी अंगों को गिराते जाना) के बाद वह उन अंगों को प्राप्त कर लेता है जो अब तक उसके पास नहीं थे। इसके बाद वह गर्म रक्तवाले (स्थिर तापमान वाले) जानवरों की तलाश में निकल सकता है।

मैथुन के बाद मादा अपनी आठों टाँगों के बल पर झाड़ी से बाहर निकल रही किसी टहनी की नोक तक चढ़ जाती है। इससे वो काफी ऊँचाई पर पहुँच जाती है। यह सब इसलिए ताकि वह वहाँ से गुज़र रहे छोटे स्तनधारी जानवरों पर गिर सके या फिर बड़े जानवर उससे टकराएँ।

चिचड़ी के उदाहरण से साफ है कि सभी जीवों के लिए जिस तरह का वातावरण महत्वपूर्ण है उसका सामान्य ढाँचा क्या है। इस खास मामले में, जानवर की जो आत्मकेन्द्रित दुनिया है वह मात्र तीन महत्वपूर्ण बातों में बतलाई जा सकती है–

1) ब्यूटिरिक ऐसिड की महक जो सभी स्तनधारी जानवरों के पसीने में होती है,

2) सैंतीस डिग्री सैल्सियस का तापमान जो स्तनधारियों के खून के तापमान के अनुरूप है,

3) स्तनधारियों की चमड़ी के विशेष गुण (आम तौर पर इस पर बालों का होना और रक्त -धमनियों की आपूर्ति होना)।

इसके बावजूद चिचड़ी एकदम से इन तीनों के साथ गर्मजोशी से जुड़ जाती है। ऐसा सब तो मनुष्य के उसकी समृद्ध दुनिया के बीच के रिश्तों में भी नहीं दिखाई देता। चिचड़ी तो असल में यह रिश्ता भर ही है – वह सिर्फ इसमें और इसके लिए जीती है।

हालाँकि, यहाँ ईज़ीक्यूल हमें बताते हैं कि एक प्रयोगशाला में एक चिचड़ी को अठारह साल के लिए बिना किसी खानपान के ज़िन्दा रखा गया। यानी अपने पर्यावरण से बिलकुल अलग स्थिति में। वे इस अजीब बात का कोई ब्यौरा नहीं देते हैं। और अपने आप को सिर्फ इस बात तक

सीमित रखते हैं कि इस "इन्तज़ार के समय में" चिचड़ी एक "नींद जैसी स्थिति में पड़ी रहती है – जैसे हम हर रात को अनुभव करते हैं।" फिर वे कहते हैं कि "बिना जीवित नमूने के, समय का कोई अस्तित्व नहीं।" पर 18 साल लम्बी इस निलम्बन की हालत में चिचड़ी और उसकी दुनिया का क्या हुआ? पर टिक या चिचड़ी तो पूरी तरह से पर्यावरण के साथ अपने रिश्ते की बिनाह पर ही ज़िन्दा रहते हैं। तो वे उसके बिना ज़िन्दा कैसे रह पाए?

(*द ओपन - मैन एण्ड एनीमल* के एक निबन्ध का सम्पादित अंश)

यहाँ, कोई भी इस बात की अपेक्षा कर सकता है कि चिचड़ी को खून का स्वाद बेहद पसन्द है, या फिर कम-से-कम उसके पास खून के फ्लेवर को पहचानने के लिए कोई इन्द्रिय तो होगी ही। लेकिन ऐसा नहीं है। ईज़िक्यूल बताते हैं कि तरह-तरह के द्रव्य से भरी कृत्रिम झिल्लियों को लेकर प्रयोगशालाओं में किए गए प्रयोगों ने दिखाया है कि चिचड़ी में पूरी तरह से स्वाद की इन्द्रिय का अभाव है। सही तापमान, (37 डिग्री सैल्सियस – जो स्तनधारी जानवरों के खून के तापमान के समान है) के किसी भी द्रव्य को वह फुर्ती से पीती है। जो भी हो, चिचड़ी के खून की दावत उसकी आखिरी दावत भी होती है। क्योंकि अब उसके पास करने के लिए कुछ नहीं बचा होता सिवाय ज़मीन पर गिरकर अण्डे देने और फिर मर जाने के।

ताला

चन्दन यादव

गाँव के पूरब से सूरज निकल रहा है। पर मेरे लिए घर के दरवाज़े पर हमेशा के लिए ताला लगनेवाला है। मैं एक ताला हूँ, जो खुलता था, बन्द होता था। घर में ताक पर एक निश्चित जगह रखा रहता था। अब टूट गया हूँ। थोड़ी देर में सलीम भाई, भाभीजान और बेटी आयशा घर लौटनेवाले हैं। वे आएँगे और मुझे टूटा और नाकाम देख कूड़े में फेंक देंगे। पर मैं जंग लगकर खत्म हो जाने तक इसी घर में रहना चाहता हूँ।

इस घर से मेरा रिश्ता सौ साल से ज़्यादा पुराना है। मुझे याद है, सलीम के दादाजी हकीमउल्ला मुझे इस घर में लाए थे। उस समय यह घर एक झोपड़ी था। तब इसमें ऐसा कोई सामान नहीं था कि दरवाज़े पर ताला लगाया जाए। उस समय हकीमउल्ला के बेटे शफीक छोटे-से थे। वे अकसर हाथ में लेकर मुझे चाटते थे। मेरा ठण्डा और नमकीन स्वाद उन्हें अच्छा लगता था। लोहे का स्वाद।

एक दिन हकीमउल्ला ने शफीक को मुझसे जीभ लगाते देख लिया। ये सिर्फ मैं ही जानता हूँ कि उस दिन उन्होंने भी सबसे छुपते हुए मेरे लोहे का स्वाद लिया।

शफीक जब कमाने लगा तो उसने इस घर को तोड़कर पक्का बनवाया। घर की दीवारें और दरवाज़े बदल गए। पर मेरी जगह कायम रही। इस घर के लोगों ने अपने खाने का तेल कई बार मेरे साथ बाँटा है। उन्होंने कभी मुझ पर जंग नहीं लगने दी। इस घर के लोगों ने पिछले सौ सालों में मुझसे वह काम बहुत कम लिया है, जो मुझे एकदम नापसन्द है – इंसानों से खाली घर के दरवाज़े पर बन्द होकर लटके रहना। हालाँकि हम ताले होते ही इसीलिए हैं। पर शायद ही कोई ताला यह पसन्द करेगा। और हाँ, मैं ये भी नहीं चाहता कि मेरी एक ही चाबी हो।

मैं शायद कुछ ज़्यादा ही भावुक हो रहा हूँ। पर अपनों से बिछुड़ने की आशंका में ऐसा होता ही है।

दरवाज़ें पर आहट हुई है। शायद वे आ गए हैं। सलीम मुझे टूटा देखकर घर की सलामती के लिए फिक्रमन्द होंगे। पर शुक्र है कि घर का कोई सामान कम नहीं है। रात में मेरे टूटने की आवाज़ सुनकर पड़ौसी नन्दू चिल्लाए थे, "कौन है वहाँ....?" उनकी कड़कती आवाज़ सुन चोर बिना कोई सामान चुराए दबे पाँव खिसक लिए थे। आखिर हम ताले घरों की हिफाज़त इंसानों के साथ मिलकर ही कर पाते हैं।

सब आ चुके हैं। कुछ बुरे की आशंका से मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है। अब सलीम मुझे उठाएँगे और कबाड़ में फेंक देंगे। पर उससे पहले मुझे आयशा ने उठा लिया। मुझसे जीभ सटाई और चुपके से अपने खिलौनों की डलिया में रख लिया।

चित्र : दिलीप चिंचालकर

आप पाखी

1 नीचे एक वर्गाकार पहेली (पज़ल्स) के चार टुकड़े दिए गए हैं। तुम्हें इन चारों टुकड़ों को जोड़कर वर्ग बनाना है।

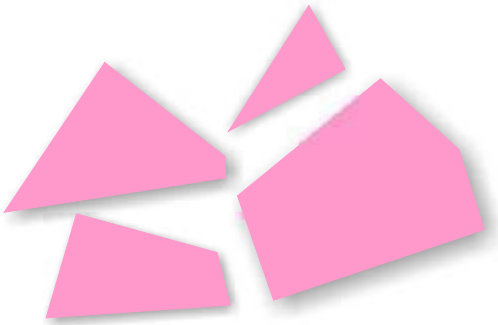

2

- सरपट दौड़े हाथ न आए
कोई उसका नाम बताए। (ग्रमम्र)
- छोटा-सा इक बन्दर
उछले पानी के अन्दर। (क्रञ्ग्)
- मैं हूँ एक अनोखी रानी
पैरों से पीती हूँ पानी। (ग्ऽग्रा)

तीनों पहेलियाँ पलक मित्तल एवं गनीव सिंह सरना, पाँचवीं, डी.पी.एस लुधियाना से प्राप्त हुई हैं।

मई की चित्र पहेली हल

मे	ज़		च		प	त्ती		भा
म		पी	क	दा	न		आ	लू
ना	श	पा	ती		च	टा	ई	
	क			दु	क्की		ना	ली
ता	र		चौ	का		ढ		ट
	खो	खा		न		प	त्थ	र
द	रा	र			कु	ली		
राँ		क	च	ना	र		कं	
ती	ली		श्मा		ता	ला	चा	बी

3 सारा, रेहान और मनप्रीत घर के बगीचे में खेल रहे थे कि उनमें से किसी एक से एक गुलदस्ता टूट गया। पूछने पर तीनों ने यह जवाब दिया:

मनप्रीत: गुलदस्ता मैंने नहीं तोड़ा।
रेहान: गुलदस्ता मैंने नहीं तोड़ा।
सारा: गुलदस्ता रेहान ने तोड़ा है।

अगर तीनों में से कोई एक ही सच बोल रहा हो तो बताओ कि गुलदस्ता किसने तोड़ा?

4 दो बिलकुल एक जैसे गिलास लो और इन्हें ऊपर तक पानी से लबालब भर लो। फिर एक गिलास में लकड़ी का एक टुकड़ा तैरा दो। अब बताओ दोनों में से कौन-सा गिलास ज़्यादा भारी होगा?

5 नाम-मना, सदा-दास, राही-हीरा
शब्दों के इन जोड़ों की खासियत यह है कि अगर पहले शब्द को उलट कर पढ़ें तो दूसरा सार्थक शब्द बनता है। क्या तुम शब्दों के ऐसे ही 10 और जोड़े खोज सकते हो?

कलाकार

रमेश उपाध्याय

एक मूर्तिकार था। वह पत्थर काट-तराशकर सुन्दर मूर्तियाँ बनाया करता था। लेकिन वह कलाकार था, व्यापारी नहीं था। उसे अपनी मूर्तियाँ बेचना नहीं आता था। उसकी मूर्तियाँ बेचने का काम एक व्यापारी करता था।

व्यापारी किसी दिन गाड़ी भर अनगढ़ पत्थर लेकर कई मज़दूरों के साथ आता, पत्थरों को मूर्तिकार के घर के आँगन में रखवाता। और मूर्तिकार को बताता कि इन पत्थरों से उसे किन देवी-देवताओं की, या किन सन्त-महात्माओं की, या किन महान स्त्री-पुरुषों की मूर्तियाँ बनानी हैं। वह मूर्तिकार को पेशगी के तौर पर कुछ रुपए देता और कहता, "बाकी भुगतान काम पूरा हो जाने पर।"

मूर्तिकार हर बार व्यापारी से कहता, "लाला, तुम जो मेहनताना मुझे देते हो, बहुत कम है। तुम हर बार कह देते हो कि अगले साल रेट बढ़ा दूँगा। लेकिन इतने साल बीत चुके, तुमने रेट बढ़ाए नहीं। अब तो बढ़ा दो।"

व्यापारी हँसकर कहता, "अरे, भाई, तुमने साल का हिसाब तो लगा लिया, कुछ माल का भी हिसाब लगाओ। तुम अपने घर में बैठे ठुक-ठुक करते रहते हो। तुम्हें क्या मालूम कि बाज़ार का क्या हाल है। महँगाई दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ रही है। यह जो कच्चा माल (अनगढ़ पत्थर) मैं लेकर आया हूँ, पिछली बार के मुकाबले दूने दाम पर मिला है।"

मूर्तिकार कहता, "महँगाई मेरे लिए भी तो बढ़ी है, लाला! खाना, कपड़ा, मकान का भाड़ा, बूढ़े अम्मा-बापू की दवाई और बच्चों की पढ़ाई-लिखाई सभी कुछ महँगा हो गया है। तुम्हारे दिए मेहनताने से अब गुज़ारा नहीं होता।"

"हाँ, भाई, तुम्हारी समस्या को मैं समझता हूँ। लेकिन क्या करूँ? कच्चा माल महँगा हो गया है और तैयार माल (मूर्तियाँ) बिकता नहीं। बाज़ार में मन्दी छाई हुई है। तुम्हारी बनाई मूर्तियाँ मुझे घाटा उठाकर औने-पौने दामों में बेचनी पड़ती हैं। मुनाफा हो रहा होता, तो मैं तुम्हारा मेहनताना खुशी-खुशी बढ़ा देता।"

"मूर्तियाँ बिकती नहीं हैं, तो क्यों बनवाते हो? क्यों ले आते हो गाड़ियाँ भर-भरकर यह अनगढ़ पत्थर?" मूर्तिकार व्यापारी के झूठ-फरेब को भाँपते हुए कहता, तो व्यापारी उसकी पूरी बात सुने बिना ही बोल उठता, "धीरज रखो, भाई, धीरज! मेरा विश्वास करो। बाज़ार की हालत सुधरते ही मैं तुम्हारा मेहनताना बढ़ा दूँगा। चलो, इस बार पुराने ही रेट पर काम करो, अगली बार से रेट ज़रूर बढ़ा दूँगा।"

मूर्तिकार विवश होकर व्यापारी का विश्वास कर लेता और मूर्तियाँ बनाने में जुट जाता। वह हर दिन सुबह से शाम तक छेनी-हथौड़ी से पत्थर काटता-तराशता रहता। व्यापारी का बताया काम पूरा करने में उसे कई-कई दिन और कई बार तो कई-कई हफ्ते या कई-कई महीने भी लग जाते। तब व्यापारी आता और मूर्तिकार को उसका बकाया मेहनताना देकर मूर्तियाँ उठवा ले जाता।

लेकिन व्यापारी जो मेहनताना देता था, वह इतना कम होता कि मूर्तिकार के घर में हमेशा गरीबी छाई रहती। अगर काम किसी तरह चल रहा था, तो उसकी पत्नी के सहारे, जो कम पैसों में भी घर चलाने में कुशल थी। वह मूर्तिकार की कमाई का एक-एक पैसा इस किफायत और सूझ-बूझ से खर्च करती कि पेशगी से लेकर पूरा मेहनताना मिलने तक काम चलता रहे और उसे किसी से उधार न माँगना पड़े। आड़े वक्तों के लिए कुछ पैसा वह बचाकर भी ज़रूर रखती थी, क्योंकि मूर्तिकार को एक काम पूरा होने से लेकर दूसरा काम मिलने तक बेरोज़गार रहना पड़ता था। जिन दिनों काम न होने पर आमदनी बन्द हो जाती, बचाकर रखे हुए पैसे ही काम आते थे।

बेरोज़गारी के दिनों में भी मूर्तिकार बेकार नहीं बैठता था। मूर्तियाँ बनाने के बाद अनगढ़ पत्थरों के जो छोटे-छोटे बेकार टुकड़े बच

जाते थे, उनमें से कुछ अच्छे टुकड़े चुनकर वह उनसे मनचाही मूर्तियाँ बनाया करता था। छोटी-छोटी, खिलौनों जैसी, सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ। देवी-देवताओं या महापुरुषों की नहीं, बल्कि आसपास रहनेवाले मनुष्यों की, पशु-पक्षियों की, पेड़ों और पहाड़ों इत्यादि की।

व्यापारी के लिए मूर्तियाँ बनाते समय वह मालिक के लिए मेहनत करनेवाले मज़दूर की तरह काम किया करता था। चुपचाप या कुछ बड़बड़ाते हुए। चाय देने में ज़रा भी देरी हो जाने पर पत्नी को डाँटते हुए। बच्चों के शोर मचाने पर, यहाँ तक कि बूढ़े माता-पिता के खाँसने पर भी चिढ़कर चिल्लाते हुए कि घर में कोई उसे शान्ति से काम नहीं करने देता। लेकिन जिन दिनों वह मनचाही मूर्तियाँ बना रहा होता, खूब खुश रहता। माता-पिता, पत्नी और बच्चों से हँस-हँसकर बातें करता। अकेले में गाता या गुनगुनाता रहता या बनाई जा रही मूर्ति से ही बतियाता रहता।

मनचाही मूर्तियाँ बनाकर वह उनमें से एक-दो अपने घर के किसी आले में सजाकर रख लेता और बाकी गली-मुहल्ले के बच्चों में बाँट देता या घर आनेवाले मेहमानों को भेंट कर देता।

एक दिन जब वह अपनी मनचाही मूर्ति बना रहा था, उसकी पत्नी चाय लेकर आई और उसके साथ खुद भी चाय लेकर बैठ गयी। मूर्तिकार समझ गया कि वह उससे कुछ खास बात करना चाहती है। उसने छेनी-हथौड़ी नीचे रखकर चाय का प्याला उठा लिया और बोला, "कहो, क्या बात है?"

पत्नी ने बात शुरू की, "सुनो जी, तुम इतने बड़े कलाकार हो..."

पूरी बात सुने बिना ही मूर्तिकार हँस पड़ा और बोला, "असली कलाकार तो तुम हो, देवी, जो इतने कम पैसों में इतने अच्छे ढंग से घर-गृहस्थी चला लेती हो। मेरी कमाई तो इतनी कम है कि उससे हम सबकी पेटभराई और तनढँकाई भी

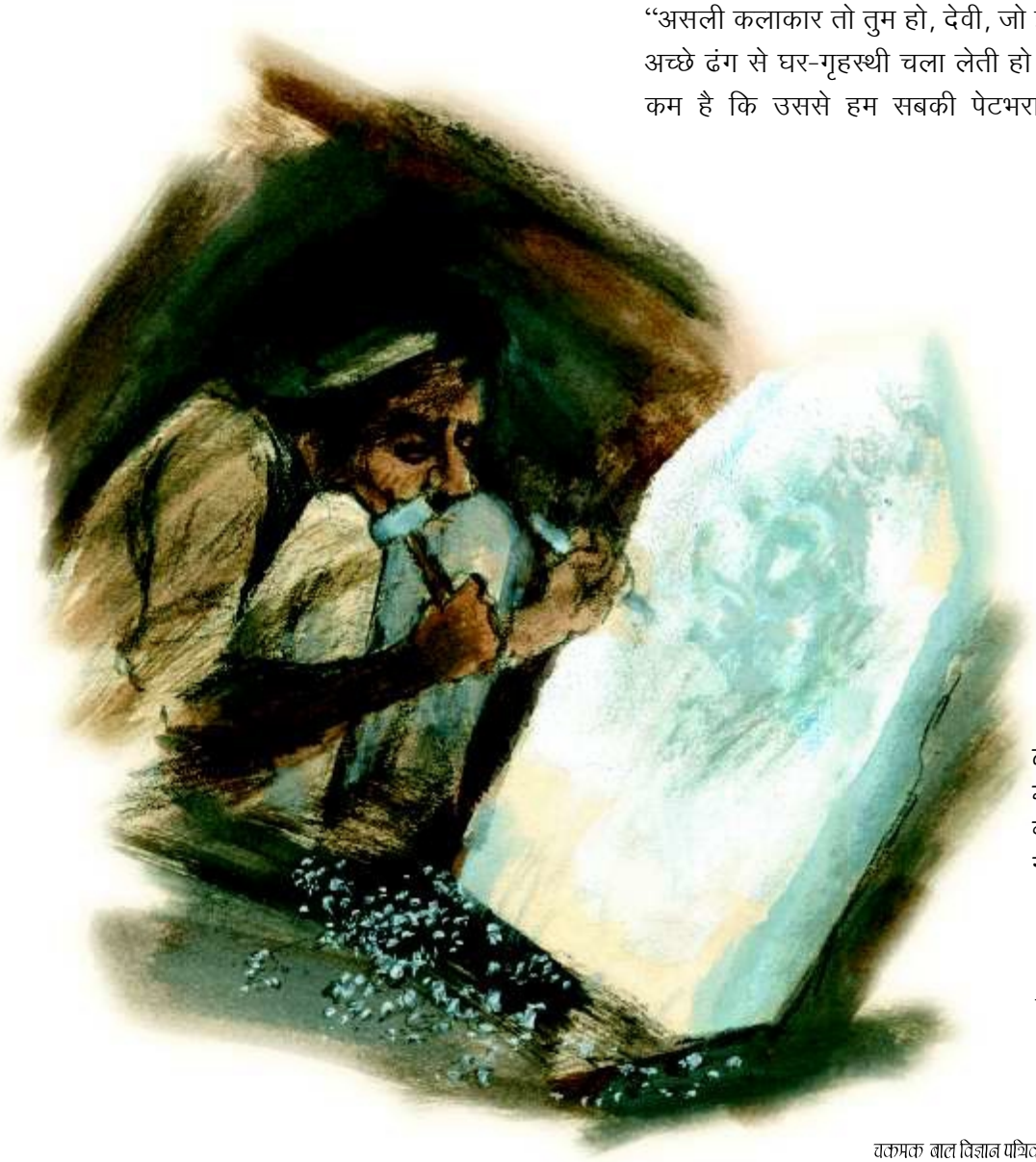

लेकिन जिन दिनों मूर्तिकार मनचाही मूर्तियाँ बना रहा होता, खूब खुश रहता।

चित्रः अतनु राय

मुश्किल है, जबकि तुम उसी में अम्मा-बापू की दवाई, बच्चों की पढ़ाई और मकान की लिपाई-पुताई का सब इन्तज़ाम कर लेती हो।"

"लेकिन महँगाई? उसका मैं क्या करूँ?" पत्नी ने समस्या बताने के साथ-साथ समाधान भी सुझाया, "तुम इतने बड़े कलाकार हो कि तुम्हारी बनाई मूर्तियाँ मन्दिरों में पुज रही हैं। सरकारी इमारतों और शहर के चौराहों पर सज रही हैं। लाला अगर इस बार तुम्हारा मेहनताना न बढ़ाए तो उससे साफ-साफ कह देना कि इतने कम पैसों में तुम उसके लिए काम नहीं करोगे।"

मूर्तिकार मुस्कराया, "उसके लिए नहीं तो किसके लिए करूँगा? शहर में मूर्तियों के व्यापारी दो-तीन ही हैं और वे भी टटपूँजिए। काम करा लेते हैं और पैसा नहीं देते। या देते भी हैं, तो थोड़ा-थोड़ा करके। रुला-रुलाकर। लाला पैसा कम देता है, लेकिन पेशगी देता है और पूरा भुगतान वक्त पर कर देता है।"

"कैसी मजबूरी है!" निराश पत्नी ने लम्बी साँस भरी।

"मजबूरी नहीं, मज़दूरी! कई बार सोचा कि काश, मैं कलाकार के साथ-साथ व्यापारी भी होता। खुद ही अपनी मूर्तियाँ बनाता और बेचता। लेकिन गरीब कलाकार व्यापारी कैसे बन सकता है? मेरा बाप, मेरा दादा, मेरा परदादा-सब मूर्तिकार थे और सब गरीब ही रहे। अच्छे कलाकार थे, लेकिन मजबूरी में मज़दूरी करते-करते मर गए।"

मूर्तिकार की पत्नी ने इस पर कुछ कहने के लिए मुँह खोला ही था कि देखा, व्यापारी घर के खुले दरवाज़े से अन्दर आ रहा है। उसने फुसफुसाकर मूर्तिकार से कहा, "लो, तुम्हारे लिए काम आ गया। लेकिन इस बार रेट पहले ही बढ़वा लेना।"

मूर्तिकार ने मुस्कराते हुए हामी भरी और व्यापारी का स्वागत करके पत्नी से कहा, "लाला के लिए चाय बनाओ। पत्थर लेकर मज़दूर भी आते होंगे, उनके लिए भी बना लेना।"

"नहीं-नहीं, चाय-वाय नहीं।" व्यापारी ने दोनों को बैठने के लिए कहा और बताया कि आज वह पत्थर लेकर नहीं आया। कुछ और बात करने आया है। कुछ देर इधर-उधर की बातें करने के बाद उसने अपने कोट की जेब से खिलौने जैसी एक छोटी-सी मूर्ति निकाली। मूर्ति सिर पर टोकरी उठाए एक औरत की थी। मूर्ति को हथेली पर रखकर कलाकार को दिखाते हुए उसने पूछा, "यह तुमने बनाई है?"

"हाँ, क्यों?" मूर्तिकार समझ नहीं पाया कि उसकी बनाई मनचाही मूर्ति व्यापारी के पास कैसे पहुँची। बोला, "तुम्हें यह मूर्ति कहाँ से मिली, लाला?"

"कहीं से भी मिली हो, मुझे यह पसन्द है। मैं चाहता हूँ कि तुम अब से मेरे लिए ऐसी छोटी मूर्तियाँ ही बनाया करो। वाह! क्या कला है! क्या हुनर है!"

मूर्तिकार अपनी तारीफ सुनकर खुश हुआ। लेकिन उसकी समझ में अब भी नहीं आ रहा था कि व्यापारी क्या चाहता है। बोला, "यह तो खिलौना है, लाला। तुम ऐसे खिलौनों का क्या करोगे?"

"बेचूँगा, और क्या? जो बड़ी मूर्तियाँ मैं तुमसे बनवाता हूँ, कभी-कभी बिकती हैं और कम बिकती हैं, जबकि छोटी मूर्तियाँ रोज़ाना बिकती हैं और खूब बिकती हैं। बड़े पैसेवाले लोग अपने घरों को ऐसी छोटी मूर्तियों से सजाते हैं।"

"लेकिन, लाला, मैं ये मूर्तियाँ बेचने के लिए नहीं बनाता। जिन दिनों काम नहीं होता, उन दिनों भी मुझसे खाली नहीं बैठा जाता। तब मैं बेकार पड़े पत्थरों के टुकड़े लेकर उनसे मनचाहा कुछ भी बनाता रहता हूँ। यूँ समझो कि ये मेरे खिलौने हैं। इन्हें बनाते समय मैं इनसे खेलता हूँ और बनाने के बाद गली-मुहल्ले के बच्चों में बाँट देता हूँ या घर आए मेहमानों को भेंट कर देता हूँ। बच्चे इनसे खेलकर और बड़े इनको अपने घर में सजाकर खुश होते हैं। इससे मुझे भी खुशी होती है।"

व्यापारी टेढ़ा मुँह करके मुस्कराते हुए बोला, "तुम्हें शायद मालूम नहीं कि तुम जिनको ये मूर्तियाँ भेंट करते हो, उनमें कुछ ऐसे चतुर सुजान भी होते हैं, जो मुफ्त में मिली ये मूर्तियाँ बेचकर पैसे बना लेते हैं। यह मूर्ति जिस आदमी ने मुझे बेची, उसी ने बताया कि यह तुम्हारी बनाई हुई है।"

"अच्छा?" मूर्तिकार को विश्वास नहीं हुआ, "कौन था वह आदमी?"

"छोड़ो, तुम उसका नाम जानकर क्या करोगे? लेकिन वह जो भी है, तुम्हारा बड़ा भारी प्रशंसक है। उसने बताया कि देवी-देवताओं और महापुरुषों की मूर्तियाँ तो तुम पैसा कमाने के लिए मजबूरी में बनाते हो। उन्हें बनाते समय तुम केवल कारीगर होते हो, जबकि इन मूर्तियों को तुम कलाकार की तरह बनाते हो। उसने यह भी बताया कि तुम्हारी बनाई इन मूर्तियों में से कोई भी दो एक जैसी नहीं होतीं। सब अलग और अनोखी होती हैं। अगर तुम्हारे पास ऐसी कुछ मूर्तियाँ बाँटने से बच गई हों, तो मुझे दिखाओ। मैं देखना चाहता हूँ।"

मूर्तिकार अपनी प्रशंसा सुनकर खुश था और उसकी पत्नी यह सोचकर कि ऐसी छोटी-छोटी मूर्तियाँ तो घर में कई हैं। अगर सब बिक गईं तो ढेर सारे पैसे मिलेंगे।

"ठहरो, मैं लेकर आती हूँ।" वह खुशी-खुशी घर के अन्दर गई और पाँच छोटी मूर्तियाँ उठा लाई।

व्यापारी ने एक-एक मूर्ति को हथेली पर रखकर ध्यान से

पहली बारिश का गीत

बारिश आती है तो
कोई चिड़िया गाती है
बारिश आती है
और चिड़िया गाती है
बारिश आती है
या कोई चिड़िया गाती है

एम जयाकृष्णन
साभारः युरेका

चित्रः अबीर घोष, संस्कार वैली, तीसरी, भोपाल

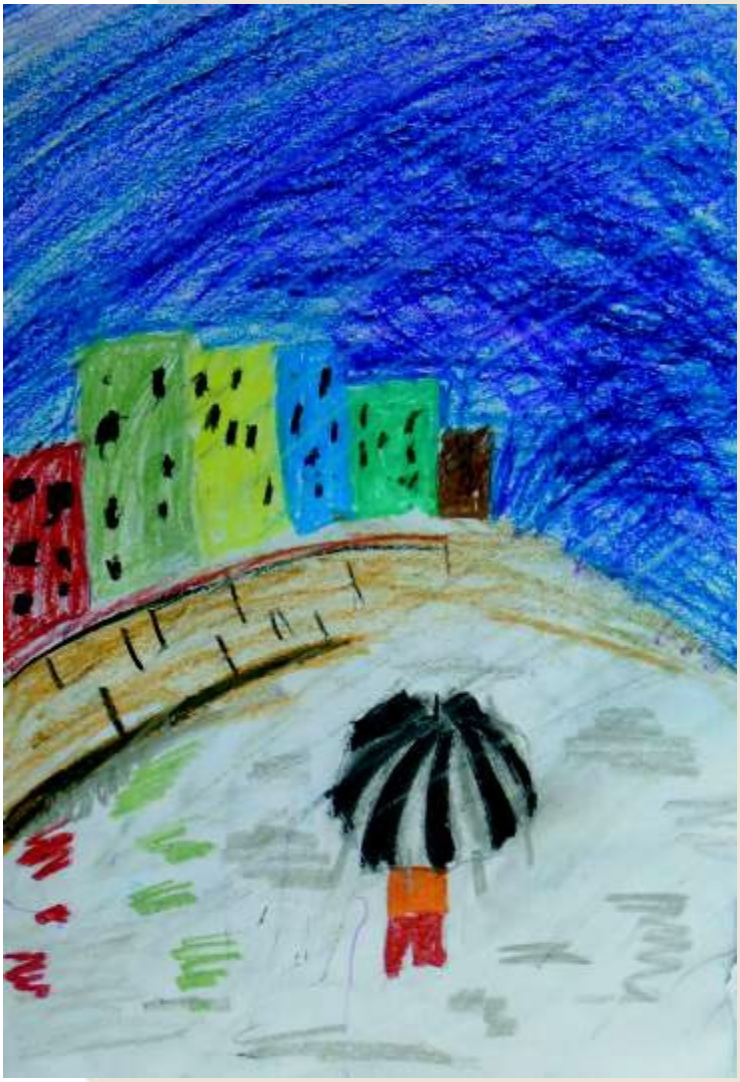

देखा। एक खेत जोतता किसान। एक घन चलाता लुहार। एक फुटबॉल खेलता बच्चा। एक पेड़ के नीचे सारंगी बजाता आदमी। एक साइकिल चलाती लड़की। सचमुच हर मूर्ति अलग और अनोखी थी। सारी मूर्तियाँ एक से बढ़कर एक सुन्दर। इतनी सुन्दर कि नज़र हटाए न हटे।

"सुनो, भाई, ये सारी मूर्तियाँ मुझे दे दो।" व्यापारी ने जेब से बटुआ निकालते हुए कहा, "इन पाँचों मूर्तियों के दाम तुम अभी ले लो और यह रखो आगे के काम की पेशगी। फिलहाल मेरे लिए ऐसी पचास मूर्तियाँ बना दो। बाद में और भी बनवाऊँगा।"

मूर्तिकार ने रुपए लेने से इंकार करते हुए कहा, "लाला, मैंने कहा न, ये मूर्तियाँ मैं बेचने के लिए नहीं बनाता।"

व्यापारी मूर्तिकार को समझाते हुए बोला, "तुम्हें शायद मालूम नहीं कि ऐसी मूर्तियाँ मुफ्त बाँटकर तुम अपना कितना भारी नुकसान कर रहे हो। इनकी कीमत उन बड़ी मूर्तियों से कहीं ज़्यादा है, जो तुम मेरे लिए बनाते हो। एक बड़ी मूर्ति का जो मेहनताना मैं तुम्हें देता हूँ, उससे दूना मैं तुम्हें एक छोटी मूर्ति के लिए दूँगा।"

"नहीं, लाला, मैं.."

"अच्छा, तिगुना दूँगा।" व्यापारी ने मूर्तिकार को मनाते हुए कहा, "यह भी सोचो कि एक बड़ी मूर्ति बनाने में तुम्हें कई-कई दिन लग जाते हैं, जबकि ऐसी छोटी मूर्तियाँ तुम एक दिन में कई-कई बना सकते हो। इसमें तो तुम्हारा फायदा ही फायदा है। मेहनत कम और मेहनताना ज़्यादा। पिछली बार तुम मेहनताना बढ़ाने की बात कर रहे थे न? लो, बढ़ा दिया मैंने तुम्हारा मेहनताना।"

मूर्तिकार ने अपनी पत्नी की ओर देखा। मानो पूछ रहा हो कि बोलो, तुम्हारी क्या सलाह है? पत्नी ने आँखों ही आँखों में कहा कि मान लो लाला की बात, सौदा बुरा नहीं है।

घाघ व्यापारी मूर्तिकार की पत्नी की आँखों का इशारा समझ गया और बोला, "लो, भाई, इन पाँच मूर्तियों के दाम लो और यह पचास मूर्तियाँ बनाने की

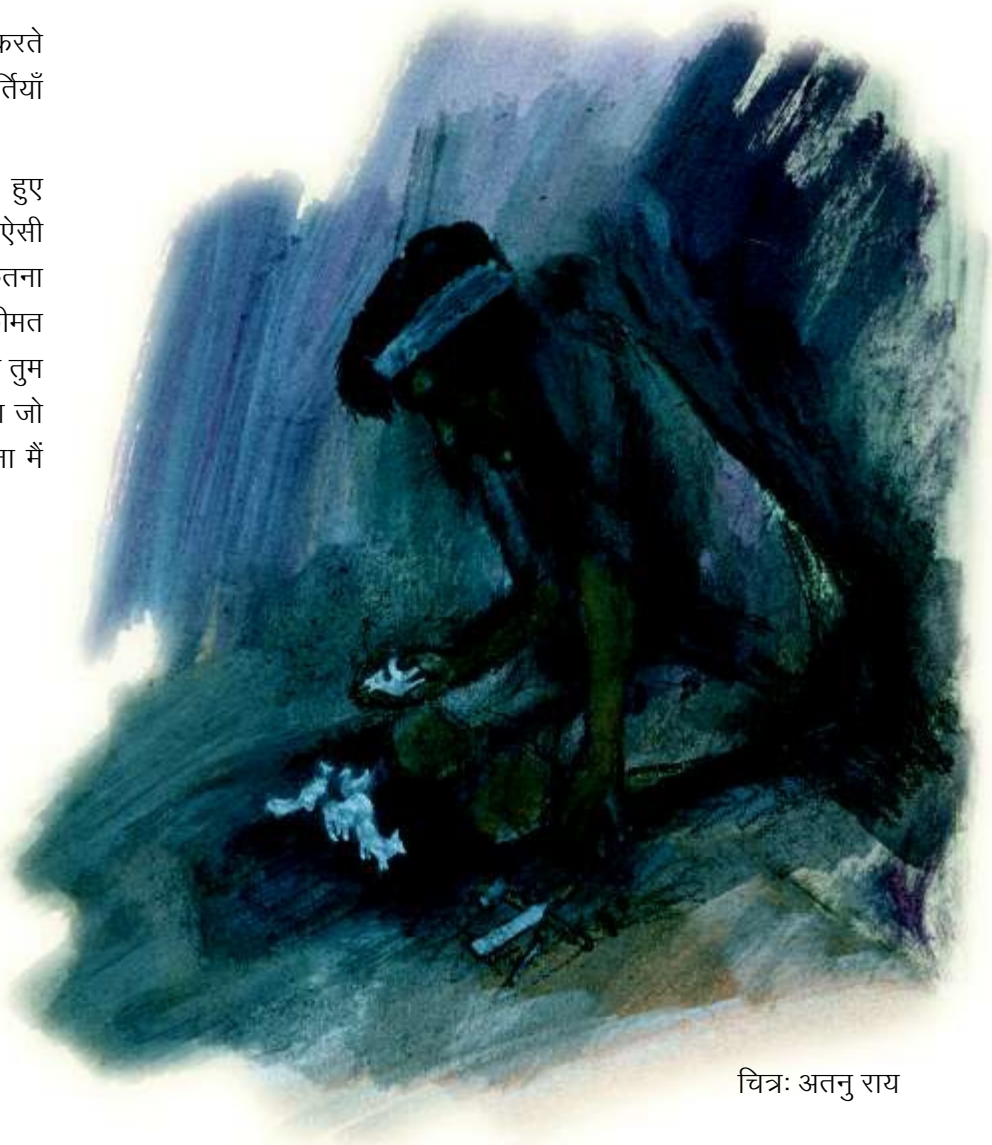

यह देखकर पत्नी एकदम विचलित हो उठी कि मूर्तिकार घुटनों में सिर दिए बैठा है और सिसक सिसककर रो रहा है।

चित्रः अतनु राय

पेशगी। कच्चा माल मैं शाम तक भिजवा दूँगा। कल से ही अपना काम शुरू कर दो। तैयार माल मुझे कब तक मिल जाएगा?"

मूर्तिकार ने सोचा, मनचाही मूर्तियाँ बनाना तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है। एक दिन में पाँच भी बनाऊँगा, तो दस दिन में पचास मूर्तियाँ बन जाएँगी। बोला, "उम्मीद है कि पन्द्रह दिन में काम पूरा हो जाएगा।"

"पन्द्रह की जगह भले पच्चीस दिन लग जाएँ, पर काम बढ़िया होना चाहिए।" व्यापारी ने कहा और खुशी-खुशी चला गया।

मूर्तिकार और उसकी पत्नी भी खुश थे। ढेर सारा पैसा हाथ में आ जाने से उनके चेहरों पर ही नहीं, घर में भी रौनक आ गई। शाम को बढ़िया खाना बना। सबने खुश होकर खाया और चैन से सो गए।

अगले दिन मूर्तिकार मनचाही मूर्तियाँ बनाने बैठा। एक अनगढ़ मगर बहुत कीमती पत्थर उसके सामने था, लेकिन वह उसे देखता ही रह गया। एक हाथ में छेनी, दूसरे हाथ में हथौड़ी और सामने अनगढ़ पत्थर। उसने लाख चाहा पर न छेनीवाला हाथ उठा, न हथौड़ीवाला।

उस समय मूर्तिकार के माता-पिता मन्दिर गए हुए थे और बच्चे स्कूल। पत्नी घर के कामकाज में व्यस्त थी। जब काफी देर तक उसे छेनी-हथौड़ी की आवाज़ सुनाई नहीं पड़ी, तो वह देखने आई कि मूर्तिकार क्या कर रहा है!

मूर्तिकार निढाल-सा बैठा सामने रखे अनगढ़ पत्थर को सूनी नज़रों से देख रहा था। उसके बाएँ हाथ में छेनी थी और दाएँ में हथौड़ी। लेकिन दोनों हाथ शिथिल-से ज़मीन पर टिके थे। पत्नी ने कहा, "खाली क्यों बैठे हो? काम शुरू करो न!"

मूर्तिकार ने चौंककर पत्नी को देखा। अचानक, न जाने क्यों और कैसे, वह गुस्से से भर उठा और चिल्लाने लगा, "मुझे कुछ नहीं सूझ रहा कि मैं क्या बनाऊँ! और तुम से इतना भी नहीं हुआ कि मुझे एक प्याला चाय पिला देतीं!"

"तुम्हें चाय चाहिए? अभी लाती हूँ।" कहकर पत्नी उलटे पाँव लौट गई। लेकिन उसकी समझ में नहीं आया कि मूर्तिकार को क्या हो गया है। इतने गुस्से में और इस तरह चिल्लाकर तो वह कभी उससे बात नहीं करता।

वह झटपट चाय बनाकर ले आई। लेकिन मूर्तिकार दूर से ही उसे देखकर चिल्लाया, "ले जाओ, वापस ले जाओ! मुझे नहीं पीनी है चाय! और कान खोलकर सुन लो, जब तक मैं न बुलाऊँ, कोई इस तरफ झाँके भी नहीं!"

पत्नी बिना कुछ कहे चली गई। समझ गई कि मूर्तिकार का मूड खराब है। इस समय उसे अकेले छोड़ देना ही ठीक है।

मूर्तिकार के माता-पिता मन्दिर से लौटे, तो उसने उनसे कहा, "आप लोग भीतर वाले कमरे में बैठें और धीरे बोलें। आपका बेटा नया काम शुरू कर रहा है और न जाने क्यों गुस्से में है।" इसी तरह जब बच्चे स्कूल से लौटे, तो उसने बच्चों से भी कहा कि उनका पिता गुस्से में है, वे तनिक भी शोर न मचाएँ।

शाम तक घर में सन्नाटा छाया रहा। मूर्तिकार की छेनी-हथौड़ी की आवाज़ें आती रहीं लेकिन वह न तो खुद घर के अन्दर आया और न उसने किसी को अपने पास बुलाया। जब अँधेरा घिरने लगा और देर तक छेनी-हथौड़ी की आवाज़ नहीं आई, तो मूर्तिकार की पत्नी दबे पाँव उसे देखने आई। यह देखकर वह एकदम विचलित हो उठी कि मूर्तिकार घुटनों में सिर दिए बैठा है और सिसक-सिसककर रो रहा है।

"क्या बात है? क्या हो गया?" पत्नी ने डरते-डरते पूछा, तो मूर्तिकार ज़ोर-से फूट-फूटकर रोने लगा। और कहने लगा, "मैं कलाकार नहीं रहा। मैं अपनी सारी कला भूल गया हूँ। देखो, यह मैंने क्या बना डाला है!"

पत्नी ने हैरान होकर देखा कि मूर्तिकार ने छोटी-छोटी कई मूर्तियाँ बनाई हैं, लेकिन वैसी ही, जैसी वह व्यापारी के लिए बनाया करता था। सब की सब वही, देवी-देवताओं और महापुरुषोंवाली। फर्क सिर्फ इतना था कि उनका आकार छोटा था। लगता था, जैसे मूर्तिकार अपने आपे में न रहा हो और आँखें बन्द करके काम करता रहा हो।

पत्नी समझदार थी। वह मूर्तिकार के पास बैठ गई और उसके आँसू पोंछते हुए बोली, "चलो, उठो। छोड़ो इस काम को। कल हम लाला की दी हुई पेशगी वापस कर देंगे और कह देंगे कि मनचाही मूर्तियाँ बेचने के लिए नहीं बनाई जातीं।"

चुनिन्दा सोलह चित्र

बोलीरंगोली

1.वीणा, चौदह वर्ष, मंज़िल, दिल्ली/ 2.अक्षय तलरेजा, छठी, प्रेसीडियम, दिल्ली/ 3.नंदिनी निषाद, कर्त्तव्य, आगरा, उ.प्र./ 4.ओमप्रकाश, दूसरी, धमतरी, छत्तीसगढ़/ 5. अंकित गोयल, नवीं, डीएवीपीएस, गुड़गाँव/ 6.जयदित्य, चौथी, डीपीएस, लुधियाना/ 7.राजवीर अशवाल, आठवीं, उत्तरकाशी/ 8.सिद्धांत राज वर्मा, किलकारी बालभवन, पटना/ 9.सुवेन्दु,चौथी, डीएवी, गुड़गाँव/ 10.सानिया, गीत समूह, दिगन्तर, जयपुर/ 11.रिया गुप्ता, आठवीं, कमला नेहरू स्कूल, भोपाल/12.सान्या नागपाल, चौथी, डीपीएस, लुधियाना/ 13.योगराज, चौथी, एपीएफ, धमतरी, छत्तीसगढ़/ 14.सेजल वातकर, सातवीं, कमला नेहरू स्कूल, भोपाल/ 15.शामली, ग्यारह वर्ष, कंडवाणी, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश/16.सूर्यांश कुमार, पाँचवीं, डीपीएस पटना

चल उड़ जा रे पंछी!

पक्षियों का अनोखा संसार (7)

लेख और फोटो: जितेन्द्र भाटिया

गर्मियों के दिन फिर आ गए हैं! सर्दियों में अकसर दिखनेवाले कुछ परिचित पक्षी गर्मियों के आते ही न जाने कहाँ गुम हो जाते हैं! पूँछ थिरकाने वाला थिरथिरा, तालाब के सुदूर कोनों में तैरती छोटी मुर्गाबियाँ और हवा में ऊँचे उड़ते उकाब, ये सब मैदानी इलाकों में सिर्फ सर्दियों में ही दिखाई देते हैं।

पक्षियों के जीवन में दो सबसे ज़रूरी क्रियाएँ हैं – भोजन और प्रजनन! इन्हीं दोनों के लिए पक्षी लम्बी यात्राएँ करते हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि दुनिया में पक्षियों की 9000 से अधिक प्रजातियों में से लगभग 40 प्रतिशत हर साल एक जगह से दूसरी जगह प्रवास (migration) करती हैं। पक्षियों की ये यात्राएँ हज़ारों सालों से चली आ रही हैं। युनान के कई पुराने ग्रंथों और बाइबिल तक में इनका ज़िक्र मिलता है। प्रवास कभी एक-तरफा नहीं होता। मौसम बदलने के बाद पक्षी फिर से अपनी वापसी यात्रा पर निकल पड़ते हैं और यह चक्र साल-दर-साल चलता रहता है।

प्रवास में सबसे विलक्षण है लम्बी दूरी का प्रवास (long distance migration)। सर्दियों के बढ़ते ही पक्षी अपने ठण्डे प्रदेशों को छोड़कर हज़ारों मील दूर हमारे

चित्र : इन्टरनेट

सुदूर मंगोलिया से सर्दियों में हमारे देश आनेवाली कुरजाएँ गर्मियों में वापस उत्तर एशिया लौट जाती हैं

स्थानीय गुगरल बत्तख लम्बा सफर नहीं करती। गर्मियों में यह पास के तालाबों में चली जाती है

सर्दियों में दिखनेवाला थिरथिरा (ब्लैक रेडस्टार्ट) सुदूर उत्तरी एशिया और यूरोप से आनेवाला मेहमान है

जैसे गर्म देशों की ओर झुण्ड बनाकर उड़ चले आते हैं – ठण्ड से बचने और अपने अनुकूल भोजन की तलाश में। राजस्थान और कई अन्य प्रान्तों में कुरजाएँ (demoiselle cranes) सितम्बर-अक्टूबर में हज़ारों की संख्या में मंगोलिया और पूर्वी यूरोप से आती हैं। मार्च के अन्त में जब यहाँ गर्मी बढ़ने लगती है और भोजन मिलना मुश्किल हो जाता है, तब ये वापस अपने ठण्डे प्रदेशों में लौट जाती हैं – घोंसले बनाने और अण्डे देने के लिए।

पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्द्ध में चूँकि मौसम उलट होता है, इसलिए वहाँ पक्षी सर्दियों में उत्तर की ओर यात्रा करते हैं और गर्मियों में दक्षिण में लौट जाते हैं।

इतनी लम्बी उड़ानें भरकर ये पक्षी अपने चुने हुए स्थान पर बिना भटके कैसे पहुँचते हैं, इस अद्भुत कहानी पर हम आगे आएँगे।

कुछ पक्षी ऐसे भी हैं जो कम दूरी का प्रवास (short distance migration) करते हैं। जैसे हमारी स्थानीय गुगरल और सिल्ही बत्तखें गर्मियों में पानी और भोजन की तलाश में आसपास के पानी के क्षेत्रों में चली जाती हैं।

पहाड़ी क्षेत्रों के पक्षियों में इससे मिलता-जुलता एक और प्रवास होता है। सिक्किम और भूटान में 5000 मीटर की ऊँचाइयों में रहनेवाला तीतर जैसा

बर्फीली ऊँचाइयों में रहनेवाला रक्तिम फेज़ेंट बहुत ठण्डे मौसम में कुछ नीचे उतर आता है

स्थानीय हुदहुद बारहों महीने` हमारमैदानों में मिलती है।

पक्षी रक्तिम फेज़ेंट (blood pheasant) अधिक सर्दी पड़ने पर नीचे 3000 मीटर तक उतर आता है और मौसम बदलने के बाद वापस ऊपर चला जाता है। हिमालय की ठण्डी आबोहवा में रहनेवाले मनुष्यों की तरह वहाँ के कई पक्षी भी यही करते हैं। पक्षियों के ठण्ड एवं ऊँचाइयों से जुड़े इस प्रवास को altitudinal migration कहते हैं।

पक्षियों के पंख उनके सबसे ज़रूरी अंग होते हैं। सभी पक्षियों के पंख हर साल झरते हैं और उनकी जगह नए पंख उग आते हैं। पंखों के झरने की इस प्रक्रिया को अँग्रेज़ी में मोल्टिंग (moulting) कहते हैं। शाही चकवा (common shelduck) जैसे कुछ पक्षी पंख झरने की प्रक्रिया में इतने नंगे हो जाते हैं कि कुछ दिनों के लिए उनका उड़ना तक मुश्किल हो जाता है। ऐसे पक्षी पंखों के झरने से पहले ही किसी सुरक्षित निर्जन द्वीप में चले जाते हैं, ताकि नए पंखों के आने तक वे एकान्त में सुरक्षित रह सकें। तो यह पक्षियों का एक और तरह का प्रवास हुआ, यानी मोल्टिंग प्रवास (moulting immigration)।

लेकिन हर साल दो तरफा सफर पर निकलनेवाले इन पक्षियों के अलावा बहुत सारे पक्षी ऐसे भी हैं जो सारा समय एक ही जगह पर बिताते हैं। इन्हें स्थानीय पक्षी कह सकते हैं। और कुछ ऐसे भी हैं जो सिर्फ थोड़े दिनों के लिए हमारे प्रदेश से गुज़रकर आगे बढ़ जाते हैं (passage migrants)। पक्षियों के इन आकाशमार्गों की कहानी तुम्हें आगे सुनाएँगे!

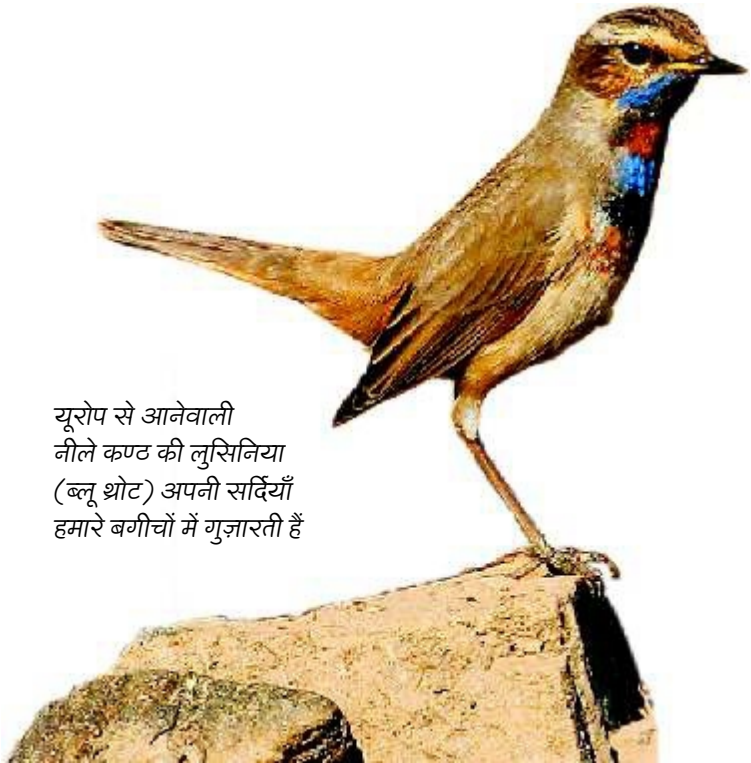

यूरोप से आनेवाली नीले कण्ठ की लुसिनिया (ब्लू थ्रोट) अपनी सर्दियाँ हमारे बगीचों में गुज़ारती हैं

एक चिट्ठी

एम गीतांजली

प्यारी मौसी

मैं, अम्मा, मनिकुट्टी (कुट्टी - छोटी बच्ची) और अप्पूभैया आराम से पहुँच गए यहाँ। ट्रेन में बहुत ही भीड़ थी। पहले तो हमें बैठने के लिए भी सीट नहीं मिली। बाद में मिली तो खिड़की के पास मिल गई। फिर तो कहना ही क्या था! ट्रेन की खिड़की से कितना कुछ दिखता है। हमने समुद्र देखा इसी खिड़की से। मैं बता ही नहीं सकती मौसी कि कितना अच्छा लगा हमें। पर थोड़ा बुरा भी लगा। यह सोचकर कि हम समुद्र में खेल नहीं सकते थे। पर चलता है....देख तो लिया ही! तुमने कहा था ना कि पहुँचते ही खत लिखना इसलिए जल्दी-से लिखने बैठ गई।

और फिर तुम्हें मालूम है न कि मनिकुट्टी कहती है कि बड़ी होकर वो तुमसे शादी करेगी! उसे तुम बहुत पसन्द आ गई हो। वो बोलती है कि तुम न तो अम्मा की तरह पीटती-वीटती हो और न ही उनकी तरह चिल्लाती हो।

तुम मुझे भी बहुत अच्छी लगने लगी हो। पर मैं तुमसे शादी नहीं कर सकती। वो इसलिए कि मैंने सोच लिया है कि मुझे आइसक्रीमवाले से शादी करनी है। रोज़-रोज़ मैंगो बार खाने को मिलेगी। मुझे मैंगो बार बहुत अच्छी लगती है। वैसे मैं कभी-कभी सोचती हूँ कि उस गुब्बारेवाले से शादी कर लूँ जो रोज़ गुब्बारे लेकर आता है! थोड़ा और सोच लेती हूँ। कितने सुन्दर गुब्बारे लाता है वो! तुम देखोगी तो तुम्हारा भी उन्हें लेने का मन कर जाएगा।

तो फिर ठीक। बाद में फिर लिखूँगी तुम्हें।

तुम्हारी प्यारी

अम्मूकुट्टी

साभारः यूरेका
मलयालम से अनुवाद - अनु एलैक्ज़ैंडर

चित्र पहेली

▶ बाएँ से दाएँ ▼ ऊपर से नीचे

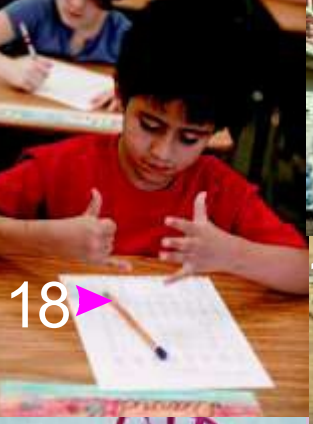

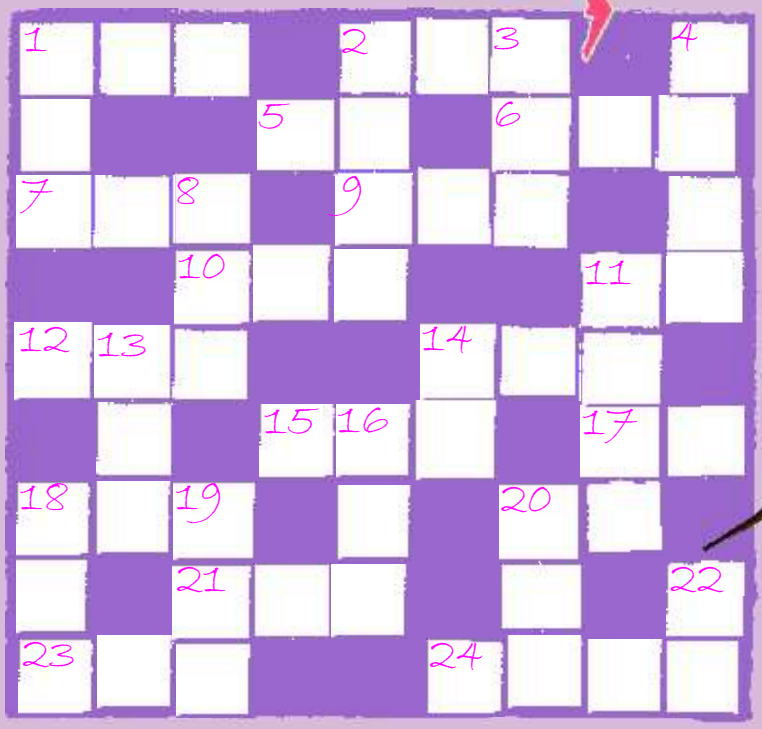

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / 261 / भोपाल / 2012-14

ओ धरती गडरियन रे

प्रभात

ओ चन्दा गडरिया रे
तारे तेरी बकरियाँ रे
चरावे नभ के चरागाह में
कभी तो आ रे हमारे गाँव में।

ओ सूरज गडरिया रे
किरन तेरी बकरियाँ रे
चरावे भोर के चरागाह में
कभी तो आ रे निशा के गाँव में।

ओ सागर गडरिया रे
लहरें तेरी बकरियाँ रे
चरावे हवाओं के चरागाह में
कभी तो आ रे तारों के गाँव में।

ओ धरती गडरियन रे
भेड़ें तेरी बदलियाँ रे
चरावे पूरब के चरागाह में
कभी तो आ रे हमारे गाँव में।

चित्रः अतनु राय

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल